अनुक्रमणिका

नल द्वारा कला–कौ,ाल का प्रदर्षन	:	7
सम्मान का विशेष आयोजन	:	19
दमयन्ती का स्वप्न–दर्शन	:	27
बनजारों के साथ	:	35
सती का प्रताप	:	44
चिन्ताग्रस्त व्यापारी–समूह	:	51
तापसों को प्रतिबोध	:	59
देव द्वारा नमस्कार	:	67
कर्मफल तो भोगना ही होगा	:	77
राजा ऋतुपर्ण की राजधानी में	:	88
दमयन्ती का अभयदान	:	107
पिंगलक की प्रवज्या	:	114
कुंडिनपुर से ब्राह्मण का आगमन	:	120
दमयन्ती पिता के घर में	:	139
दूसरे स्वयंवर का विचार	:	165
शुभ स्वप्नदर्शन : सूर्योदय	:	176
नल का राज्याभिषेक	:	188
पुनरागमन और राज्यशासन	:	196
आत्मसाधना के मार्ग पर	:	204

नल द्वारा कला–कौशल का प्रदर्शन

पनघट पर बैठकर नल सोचने लगा कि यह कौन–सा नगर है? जनता का राजा कौन है और राजनीति का रूप कैसा है? जनता के नैतिक आचार–विचार कैसे हैं? राजा के प्रति जनता की धारणा कैसी है? यदि कल्याणकारी व्यवस्था है, तो यहाँ रहना मेरे लिए हितकारी होगा।

बहुत समय तक नल पनघट पर बैठे रहे, परन्तु कुबड़े होने से उनकी तरफ किसी का विशेष ध्यान नहीं गया। महिलाएँ अपने–अपने कलश लेकर आतीं और आपस में मनोविनोद करते हुए पानी भरकर चली जाती थीं। दूसरे व्यक्ति भी, जो वहाँ विश्राम करने के लिए आते थे, वे भी विश्राम करने के बाद अपने–अपने काम पर चल देते थे। उन सबकी बातचीत से नल को मालूम हो सका कि इस नगर का नाम सुंसमारपुर है और राजा का नाम दधिपर्ण है। राजा जन–कल्याण करने वाले और प्रजाहितैषी हैं। उनमें दुर्व्यसन नहीं है। जनता भी राजा के आचार–विचारों का अनुसरण करने वाली है। प्रजा में सुख–शांति और समृद्धि है।

इन सब बातों को जानकर नल ने सोचा कि मेरा यहाँ रहना ठीक रहेगा। पहले भी सुन रखा था कि राजा दधिपर्ण योग्य शासक हैं और उनका राज्य पवित्र राज्य है। जैसा सुना था, वैसा ही यहाँ मालूम हो रहा है। फिर जैसे ही वे नगर में जाने के विचार से कदम उठाकर चलने लगे, तो कुछ कोलाहल सुनायी दिया। कोलाहल में

विशेषकर रोने की करुणाजनक आवाजें आ रही थीं। उनको सुनकर नल चौंक पड़े कि यह क्या बात है? यहाँ के राजा तो बड़े दयालु हैं। फिर यह करुणाजनक क्रन्दन, कोलाहल क्यों हो रहा है? जानने के लिए तेजी से कदम बढ़ाये, तो और भी जोर–जोर से रोने–चिल्लाने की आवाज के साथ सुनायी दिया कि भागो–भागो, बचाओ। वे सोचने लगे कि बात क्या है ? मैंने यहाँ के राजा के बारे में जो बातें सुनी थीं, क्या वे गलत हैं ? वे बदल गये हैं क्या ? क्या वे जनता को त्रस दे रहे हैं? मन तो कहता है कि वे जनता को तकलीफ नहीं दे सकते, फिर भी अपनी नजर से देखकर निर्णय कर लेना चाहिएँ

ऐसा सोचकर जैसे ही नल आगे चले, तो स्पष्ट आवाजें सुनायी दीं–बचो, बचो। वह तहस–नहस करते हुए मदोन्मत्त होकर दौड़ रहा है। जहाँ भी जिसको जगह मिले, वहीं छिप जाये। इन आवाजों को सुनकर उन्होंने निश्चय किया कि कोई हाथी मदोन्मत्त होकर हाथीखाने से भाग निकला है और नगर में तबाही मचाते हुए इधर–उधर दौड़ रहा है। उसी को देखकर लोग चिल्ला रहे हैं, जिससे कि दूसरे लोग सावधान होकर अपना बचाव कर सकें। सभी उपाय करने पर भी हाथी काबू में नहीं आ रहा था। नगरवासियों में भगदड़ मची हुई थी, भय के मारे जिसको जहाँ छिपने की जगह मिलती, वहीं छिप जाते थे। हाथी के उपद्रव को शांत करने के लिए महाराज दधिपर्ण भी सेना के साथ नगर में चक्कर लगा रहे थे। इस स्थिति को देखकर उन्होंने घोषणा की कि जो व्यक्ति इस हाथी के उपद्रव को शांत करके जनता के जान–माल की रक्षा करेगा, उसे मनचाही धन दौलत दी जायेगी। उसे पाँच–सौ गाँव जागीर में दिये जायेंगे और उसका पूरा एहसान भी माना जायेगा। जनता की रक्षा के लिए यह धन–दौलत तो क्या, अपना सर्वस्व भी देने को तैयार हूँ।

राजा की घोषणा को सुनकर बड़े–बड़े सूरमाओं ने सोचा कि हाथी को वश में कर लेंगे, तो मनचाहा इनाम मिलने के साथ–साथ पाँच–सौ गाँव भी जागीर में मिलेंगे। वे सब हाथी को वश में करने के

उपायों में जुट गये, लेकिन हाथी तो साक्षात् यमराज का रूप धारण किये हुए इधर–उधर दौड़ रहा था। वे हाथी के सामने जाते, लेकिन जैसे ही हाथी को आते देखते, तो भाग निकलते और जहाँ कहीं भी छिपने को जगह मिलती, वहीं छिप जाते। फिर से हाथी के सामने आने का साहस भी नहीं कर पाते थे।

नल भी हाथी का यह सब उपद्रव और उसको वश में करने के लिए होने वाली दौड़धूप देख रहे थे। उन्होंने भी जब राजा की घोषणा सुनी, तो सोचने लगे कि न तो मुझे राज्य चाहिए और न ही धन–दौलत की इच्छा है, लेकिन जानमाल की रक्षा के लिए अगर मैं कुछ कर सकूं, तो फिर इससे बढ़कर और क्या लाभ हो सकता है? ऐसा सोचकर वे हाथी के सामने दौड़ पड़े।

कुबड़े आदमी को हाथी की और दौड़ते देख अपने–अपने घरों की छतों आदि पर खड़े लोग जोर–जोर से चिल्लाने लगे–अरे कुबड़े ! ओ कुबड़े! जागीर पाने के लोभ में पड़कर मरने क्यों जा रहा है? यह तेरे बलबूते की बात नहीं है। जब यह बड़े–बड़े सूरमाओं के वश की बात नहीं, तो तू वहाँ जाकर क्या कर लेगा?

बातें तो सभी कर रहे थे, लेकिन किसी की भी हिम्मत नहीं हो रही थी कि भाग कर कुबड़े को जाने से रोक सकें और वहीं लाकर छिपा लें। कई लोग हंसी उड़ाते कहने लगे–इसकी सूरत तो देखो, यह कुबड़ा क्या कर लेगा? यह तो कहने पर भी नहीं मान रहा है। इसे मौत ही खींचकर ले जा रही है। जब यह किसी की सुनता ही नहीं, तो हम क्या करें?

इसी तरह दूसरे–दूसरे लोग भी अपने–अपने ढंग से कई प्रकार की बातें कर रहे थे, परन्तु नल किसी की बात पर ध्यान नहीं देते हुए जिधर से हाथी आ रहा था, उधर ही दौड़ते हुए चले गये और ऐसे ही हाथी को अपने सामने तेजी से आते हुए देखा, तो एक और मुड़ गये और बार–बार ऐसा करके हाथी को थका दिया। जब

देख लिया कि हाथी अच्छी तरह से थक गया है, तो उसकी पूंछ पकड़ कर उसके कूल्हे पर घूंसे मारने चालू कर दिये। बार–बार की इस मार से हाथी हैरान होकर कुछ ढीला पड़ा, तो मौका देखकर वे उस पर सवार हो गये और फिर गंडस्थल पर जोर–जोर से घूंसा मारना चालू कर दिया। इससे उसका सब मद झर गया और वह बकरी की तरह शांत हो गया।

जनता ने जब देखा कि हाथी को शांत करके कुबड़ा उसकी पीठ पर बैठा हुआ है, तो आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। देखने वाले कहने लगे–इसने तो हमारे देखते–देखते थोड़ी–सी देर में ही हाथी को वश में कर लिया।

हाथी को वश में कर लिए जाने के समाचार सारे नगर में बिजली की तरह फैल गये। अभी तक जो नगर सूना–सूना मालूम पड़ता था और सभी नगर–निवासी भय के मारे घरों में छिपे हुए बैठे थे, वे बाहर निकल पड़े, हर्ष का पार नहीं रहा। वे नाचते–गाते प्रवेशद्वार के निकट आने लगे। छोटे–बड़े सभी हाथी के नजदीक आकर उसे छूते थे। कोई सूंड को हाथ लगाता, तो कोई पूंछ पकड़ता। कोई उसकी पीठ पर हाथ फेरता और कोई पैरों को छू लेता, लेकिन हाथी तो चुपचाप बकरी–सा बनकर शांति से घूम रहा था।

नगरवासी इस अनोखे दृश्य को देख सोचने लगे कि यह कौन है? दिखता तो कुबड़ा है और रंगरूप भी काला स्याह हो रहा है, परन्तु इसकी निपुणता तो कमाल की ही है कि बिना हथियार के हाथी को वश में कर लिया। यह कोई मंत्रवादी मायावी पुरुष तो नहीं हैं? हमारी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा है।

महाराज दधिपर्ण जब कुबड़े को साथ लेकर राजभवन की ओर चले, तो जनता भी उत्सुकता के साथ पीछे–पीछे चलने लगी कि यह कौन है और कहाँ से आया है? अपनी–अपनी जिज्ञासा को

शांत करने के लिए हजारों व्यक्ति राजभवन के सामने वाले मैदान में इकट्ठे हो गये।

व्यक्तियों के शांतिपूर्वक बैठ जाने पर महाराज दधिपूर्ण कुबड़े की ओर इशारा करके जन–समूह को संबोधित करते हुए बोले–नगर की अशांति को शांति में परिणित करने वाले ये महामना महापुरुष हैं। इनके पुरुषार्थ से ही नगरवासियों को राहत मिली है। यद्यपि इनकी शारीरिक आकृति तो विचित्र दिख रही है और शरीर को देखते हुए इनकी शक्ति का कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता, लेकिन आत्मिक बल और कला की दृष्टि से ये महान हैं। इनकी महानता का मैं स्वागत करता हूँ। इस कार्य में सभी नगरवासियों का सहयोग भी अपेक्षित है। आशा है, आप लोग अवश्य ही सहयोग देंगे। साथ ही इन महापुरुष से भी अनुरोध करता हूँ कि इस अवसर पर ये भी अपने कुछ भाव प्रगट करें, हाथी को शांत करने के बारे में स्थिति का स्पष्टीकरण करें।

महाराज दधिपर्ण के बैठ जाने के बाद कुबड़े ने खड़े होकर अपने भावों को व्यक्त करते हुए कहा–मैं कुबड़े शरीर वाला एक साधारण व्यक्ति हूँ। आप मेरा इतना सत्कार कर रहे हैं, मेरा अभिनन्दन कर रहे हैं, यह आपकी महानता है। मैंने नगरवासियों की तकलीफ मिटाने के लिए जो कुछ भी किया है, वह सिर्फ अपने कर्तव्य–पालन की दृष्टि से किया है, किन्तु इनाम पाने के लिए नहीं। कर्तव्य–पालन कर लोभ, लालच, मान–सम्मान प्राप्ति का ध्यान रखना इन्सानियत नहीं है। दुःख को दूर करने के लिए उपाय करना मनुष्यमात्र का कर्तव्य है। मैं नगर की शोभा देख रहा था कि इतने में मुझे चीखें सुनायी दीं। चीखों में करुणा मिली हुई थी, तो मुझ से रहा नहीं गया। मैं हकीकत को जानने के लिए आगे बढ़ा, तो मालूम हुआ कि कोई पागल हाथी सारे नगर में तबाही मचा रहा है। इस संकट से जनता को बचाने के लिए मैंने अपनी शक्ति लगाने का निश्चय किया और हाथी का मुकाबला करने उसके सामने चल दिया। जनता की मेरे

लिए सहानुभूति थी और लोगों ने कहा भी कि तू मत जा, मारा जायेगा। मैं इस पवित्र भावना का सत्कार करता हूँ। इसके लिए सभी का आभार मानता हूँ, परन्तु मैं इसलिए आगे बढ़ा कि ये सब मेरे परिवार के भाई हैं और परिवार की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। इसीलिए हाथी के सामने जाकर उसको ललकारा कि वह मुकाबला करना चाहे, तो मैं तैयार हूँ। जब तक प्राण हैं, तब तक तो तेरा मुकाबला करूंगा ही।

जनता की शुभ भावनाएँ मेरे साथ थीं, जिससे उनकी शक्ति भी मेरे पास आ गयी। अपनी आवाजों द्वारा वह मेरा उत्साह बढ़ा रही थी। मैंने तो परिस्थिति को देखकर हाथी को तदबीर से वश में कर लिया। इसलिए यह सत्कार मेरा न करके जनता का और उसकी शुभ भावनाओं का कीजिएँ मैं तो आप लोगों के चरणों में हूँ और कुछ समय के लिए यहाँ रहने आया हूँ।

कुबड़े की बात सुनकर सभी दर्शकों की दृष्टि में वह कुछ और ही ज्ञात होने लगा। वे अनुभव कर रहे थे कि इसकी वाणी में कितना ओज और पवित्रता है, साथ–साथ मन में यह उत्सुकता भी पैदा हो रही थी कि इसने और तो सब बातें बतला दीं, हम लोगों की तारीफ भी कर दी तथा अपने को जनता का विनम्र सेवक भी कह दिया, लेकिन यह नहीं बताया कि वह स्वयं कौन है और कहाँ से आया है? मालूम होता है कि यह बहुत ही चतुर व्यक्ति है। अभी इसने अपना परिचय नहीं दिया, तो कोई बात नहीं। यह कहता है कि मैं कुछ समय के लिए यहाँ रहने आया हूँ, तो आगे समय आने पर सब परिचय पूछ लेंगे और यहाँ रहेगा, तो धीरे–धीरे अपने आप ही सब कुछ बता देगा।

महाराज दधिपर्ण ने भी परिचय के बारे में विशेष ध्यान नहीं दिया। उन्होंने सोचा कि अभी यह थका हुआ है, पसीना–पसीना हो रहा है, इसीलिए दूसरी बातों के बारे में पूछताछ करने के बजाय

अभी इसको आराम करने दिया जाये। वे कुबड़े की ओर देखकर बोले–महानुभाव! अभी आप थके हुए हैं। अतः विश्रामगृह में पधारें और स्नान, भोजन, विश्राम आदि करने के बाद राजसभा में आकर पुनः दर्शन दें।

प्रतिदिन की तरह अपने निश्चित समय पर राजसभा की बैठक प्रारंभ हुई। सभी सभासद, मंत्री, नगर के सेठ, साहूकार आदि अपने–अपने स्थान पर बैठे थे। कुबड़े का परिचय जानने की उत्सुकता से साधारण जन भी बहुत बड़ी संख्या में एकत्रित हो गये थे। सभी एक ही बात कह रहे थे कि यह कुबड़ा व्यक्ति कौन है? है तो कोई कलावान व्यक्ति। महाराज दधिपर्ण भी सिंहासन पर बैठे हुए सभी में हो रही बातचीत को सुन रहे थे कि इसी समय कुबड़े ने राजसभा में प्रवेश किया, तो उपस्थित जनसमुदाय ने सम्मान में खड़े होकर उसका अभिनन्दन किया और निकट आने पर महाराज दधिपर्ण ने अपने सिंहासन के बगल में रखे आसन पर उसे बैठाया।

महाराज दधिपर्ण को उपस्थित जनों की मनोभावना पहले से ही ज्ञात थी और स्वयं भी कुबड़े का परिचय पाने के लिए उत्सुक हो रहे थे। जब सभी व्यक्ति अपने–अपने स्थान पर बैठ गये और पूर्णतया शांति छा गयी, तो उन्होंने कुबड़े की ओर देखकर कहा–मैं आपकी कला की पूरी तारीफ नहीं कर सकता, परन्तु इतना अवश्य जानना चाहता हूँ कि ऐसी कला सिखानेवाले आपके गुरु कौन हैं? कौन आपके पिता हैं? आपका निवासस्थान कहाँ है? आपके परिवार में कौन–कौन हैं? आप यहाँ कैसे पधारे, और कोई साथ में है या अकेले ही हैं? कृपया हमारी जिज्ञासाओं का समाधान करें। जब तक आप जानकारी नहीं देंगे, तब तक हमें तसल्ली नहीं होगी।

महाराज दधिपर्ण के प्रश्नों को सुनकर कुबड़े ने विचार किया कि ये कितने चतुर हैं कि अपने थोड़े से प्रश्नों के द्वारा सब कुछ पूछ लेना चाहते हैं। इनका उत्तर कैसे दूं? यदि स्पष्ट कह देता हूँ, तो

परेशानी में पड़ जाऊँगा, लेकिन जिज्ञासाओं का समाधान तो करना ही होगा। समाधान किये बिना ये मुझ पर विश्वास नहीं करेंगे। ऐसा सोचकर उसने गंभीरतापूर्वक अपने परिचय में कहा–

राजन् ! एक साधारण–सा आदमी अपना परिचय भी दे, तो क्या? फिर भी आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए अपने बारे में दो–चार शब्दों को आपके सामने रखता हूँ। आपने कोसलपुर का नाम सुना ही होगा और न्यायनीतिपूर्वक प्रजा का पालने करने वाले, धार्मिक आचार–विचार से अपने जीवन को पवित्र बनाने वाले प्रजावत्सल महाराज नल को भी आप लोग जानते होंगे। मैं उनके यहाँ रसोईया था। अपने ऊपर उनके प्रेम के बारे में कुछ भी नहीं कह सकता हूँ। उनका इतना अधिक स्नेह था कि वे मुझे अपना अन्यतम सेवक मानते थे।

उनका अन्यतम सेवक होने के नाते आप यह तो समझ ही गये होंगे कि उनकी कला, उनके गुण आदि का थोड़ा–बहुत अंश मेरे जीवन में भी आना स्वाभिवक ही था। राजन्! महाराज नल के जीवन में अनेक विशेषताएँ थीं। वे बहत्तर कलाओं में पारंगत थे। कलाओं में प्रवीण पुरुष प्रायः स्वतंत्र और पुरुषार्थी होते हैं। महाराज नल के गुणों की प्रशंसा मेरे जैसा व्यक्ति क्या कर सकता है? उनकी सरलता, विनम्रता आदि को देखकर साधारण व्यक्तियों को यह पता नहीं लगता था कि महाराज महान कलामर्मज्ञ हैं। सूर्यपाक भोजन बनाने की कला तो उनके जीवन की सार थी। उनके साथ रहने से इस कला को मैं भी सीख गया हूँ। हूबहू मेरे जीवन में भी वह कला आ गयी है। मैंने जो कुछ भी कला पायी, वह सब उनकी दी हुई है। मेरी अपनी कुछ भी नहीं है। मैं उन्हें अपने पिता तुल्य मानता हूँ। वे मेरे सर्वस्व थे और मैं अपने को उनका अनुचर मानने में गौरव का अनुभव करता हूँ। ऐसे स्वामी दुनिया में विरले ही होते हैं।

राजन ! आप यह तो अच्छी तरह से जानते हैं कि यह संसार

एक दृष्टि से हिंडोले के समान है। हिंडोले में बैठा व्यक्ति कभी नीचे आता है, तो कभी ऊपर जाता है। हमारे स्वामी महाराज नल की भी यही स्थिति हुई। उनके साथ षड्यंत्र रचा गया और वे अपने छोटे भाई कुबेर के साथ जुआ खेलकर राज–वैभव आदि सब कुछ गंवा बैठे और तब राज्य छोड़कर अपनी धर्मपत्नी दमयन्ती के साथ वन की ओर चले गये। कुबेर राज्य का स्वामी बन गया। कुबेर ने उनके साथ जो व्यवहार किया, वह तो बहुत ही शर्मनाक है।

जब मैंने अपने स्वामी के साथ होने वाले कुबेर के बर्ताव को देखा, तो मैं बहुत उदास हुआ। परन्तु मेरे जैसा व्यक्ति उनके लिए कर भी क्या सकता था? मैंने सोचा कि जहाँ कला का सम्मान नहीं है, विद्वत्ता का मान नहीं है, तो ऐसे व्यक्तियों के बीच रहना भी ठीक नहीं। जब हमारे प्रजावत्सल महाराज वहाँ नहीं रहे, तो मैंने भी कुबेर के पास रहना उपयुक्त नहीं समझा और कोशला नगरी को छोड़कर इधर चल पड़ा। देश छोड़ते समय यह जरूर सुना था कि महाराज दधिपर्ण कलावान और गुणों की कद्र करने वाले हैं। उनका जीवन सत्ता और संपत्ति में आसक्त नहीं है। राज्य में सुख शांति है और राज्य–व्यवस्था न्याय–नीति पूर्ण होने से प्रजा में किसी प्रकार का भय नही है। ऐसी प्रशंसा सुनी, तो इधर–उधर घूमता हुआ, देश–देश के लोगों को देखता हुआ और महाराज नल के बारे में समाचारों की जानकारी करता हुआ, आपके गुणों से आकर्षित होकर यहाँ आ पहुँचा। जब मैंने यहाँ की जनता का जीवन–व्यवहार देखा और अपने राजा के बारे में उसने जो भाव प्रकट किये, तो मुझे विश्वास हो गया कि मैं महाराज दधिपर्ण के बारे में जो कुछ सुनता आ रहा था, वह सही है। मैंने जो कुछ भी सुना था, उससे बढ़कर यहाँ देखने को मिला है।

राजन ! आपमें कितनी उदारता है, कला के प्रति कितना प्रेम है, इसको बतलाने के लिए मेरे पास योग्य शब्द नहीं है। आप शरीर को देखकर किसी की इज्जत नहीं करते हैं, परन्तु गुणों की दृष्टि से

व्यक्ति का मूल्यांकन करने वाले हैं। गुणों को परखने की आपमें अपूर्व क्षमता है। मैं अपना ही उदाहरण दूं कि मेरा शरीर कुबड़ा है। मेरा जो रूप रंग है, उससे किसी का प्रिय नहीं बन सकता और देखने वाले घृणा ही करने लगेंगे, लेकिन आपने जो प्रेम दिया और आप जिस प्रकार मेरा सम्मान कर रहे हैं, उससे तो मैं यह निश्चय कर सका हूँ कि आपके दिल में मेरे गुणों के प्रति आदर है। आप व्यक्ति के गुणों को देखने वाले हैं। यदि ऐसे व्यक्ति राष्ट्र के स्वामी हौं तथा योग्यता और गुणों की कद्र करने वाले बन जायें, तो जनता उन्हें हृदय–सम्राट मानेगी। मैं आपमें यह सब बातें देख रहा हूँ, जिससे मेरा हृदय आह्लादित हो रहा है।

आपने मेरा जो परिचय पूछा था, तो मुझ जैसा गरीब व्यक्ति अपना इससे अधिक और क्या परिचय दे सकता है?

कुबड़े के कथन को सुनकर महाराज दधिपर्ण बोले–यह तो हमने भी सुना था कि महाराज नल जुए में अपना राजपाट आदि सब गँवा बैठे और वनवासी होकर वन में चले गये हैं, लेकिन उसके बाद के समाचार हमें मालूम नहीं हुए कि इस समय वे कहाँ हैं और किस हालत में अपना जीवन बिता रहे हैं?

कुबड़ा–आपकी आज्ञा हो, तो मैंने देश–देश में घूमते हुए जो कुछ सुना है, उसे भी आपकी जानकारी के लिए सुनाऊँ।

महाराज नल के समाचार जानने के बारे में सभी उत्सुक थे। महाराज दधिपर्ण ने आज्ञा देते हुए कहा–ऐसे प्रतापी राजा के बारे में हमको जानना ही चाहिएँ तुमने जो कुछ भी सुना हो, उसका पूरा हाल सुनाओ।

महाराज दधिपर्ण की आज्ञा पाकर कुबड़े ने आगे कहना शुरू किया–कुबेर जन्म से ही दुष्ट प्रकृति वाला है और महाराज नल के वन में चले जाने के बाद भी उसने उनका पीछा नहीं छोड़ा। उसने सोचा कि जब तक नल जिन्दा रहेगा, तब तक जनता मेरा समर्थन

नहीं करेगी। आज भी नल के लिए सारी प्रजा रोती है। इसलिए नल कहीं भी मिल जाये, तो उसे जिन्दा नहीं रहने दूं और ऐसा विचार कर उसने नल महाराज को मारने के लिए अपने आदमी छोड़ रखे हैं। अभी जंगल में इधर–उधर घूमते हुए मैंने वहाँ रहने वालों के मुँह से सुना था कि नल महाराज नहीं रहे। इतना कहकर कुबड़ा चुप हो गया।

कुबड़े के मुँह से नल महाराज के न रहने के समाचार सुनकर राजा दधिपर्ण विचार में पड़ गये, उनकी आँखों से आँसू झलक आये। हृदय शोक से भर गया कि महाराज नल जैसे प्रतापी राजा क्या अब नहीं रहे? उपस्थित व्यक्तियों में सन्नाटा छा गया। सभा में हर्षोल्लास छाया हुआ था और श्रोताओं के चेहरे जो हंसी से चमक रहे थे, वे सब उदास हो गये।

कुबड़े की ओर देखकर महाराज दधिपर्ण सांत्वना देते हुए बोले–तुम घबराओ मत। भाग्य में लिखे को कोई मेट नहीं सकता है। तुम यहाँ शांति से रहो, किसी प्रकार की चिन्ता मत करो और सभा को संबोधित करते हुए बोले–सभासदों ! मैं सोच रहा हूँ कि नल महाराज के पास रहने वाले उनके अनन्य भक्त रसोइए ने यहाँ आकर मदोन्मत्त हाथी के उपद्रव को दूर करके नगर में जो शांति का वातावरण बना दिया है, तो अपनी घोषणा के अनुसार उसका आदर–सत्कार करते हुए उसे राज्य का हिस्सा दूं। लेकिन बीच में ही महाराज नल के दुःखद समाचार सुनकर आज की सभा बजाय हर्ष के शोक में परिणत हो गयी है।

महाराज नल के विषय में जो कुछ भी सुना, उसको अब बदला नहीं जा सकता है। किन्तु महाराज अपने रसोइए को सूर्यपाक की कला सिखा गये, तो मैं समझता हूँ कि वे कला की दृष्टि से आज भी जिन्दा हैं। इसीलिए उनकी कला को सदा जीवित रखने और उसके माध्यम से महाराज नल को स्मरणीय बनाने के लिए अभी इसे

अपनी भोजनशाला का पाकशास्त्री नियुक्त करता हूँ। बिगड़े हाथी को वश में करके नगर में शांति का संचार करने वाले को इनाम देने की घोषणा के अनुसार पारितोषिक देने का बाद में आयोजन किया जायेगा। साथ ही महाराज नल के इन पाकशास्त्री से अनुरोध है कि ये अपने मन को शांत बनाकर यहाँ निश्िंचतता से रहें।

सभा के विसर्जित हो जाने पर सभी उपस्थित जन अपने–अपने निवास–स्थानों को चल दिये। महाराज दधिपर्ण भी कुबड़े को साथ लेकर राजभवन में आये।

❖ ❖ ❖

सम्मान का विशेष आयोजन

कुबड़े के रूप में अपने आपको छिपाए हुए महाराज नल राजा दधिपर्ण की भोजनशाला में प्रधान पाकशास्त्री बन गये थे। अपनी कला में प्रवीण होने से वे प्रतिदिन सूर्य की गरमी से विविध प्रकार के उत्तमोत्तम व्यंजन तैयार करते थे। महाराज दधिपर्ण और परिवार के दूसरे सभी सदस्य तथा अतिथि आदि जब भी भोजन करते, तो वे तारीफ करते नहीं अघाते थे। वे कहते थे कि ऐसा भोजन तो पहले कभी नहीं खाया है। धीरे–धीरे चारों ओर प्रशंसा होने लगी। लोग आपस में बातचीत के प्रसंग में सूरत–शक्ल और गुणों की तुलना करते हुए कहने लगे थे–

x|.k% i|tkLFkku| x|f.k"k| u fy|x| u p o;%A

गुण ही पूजनीय होते हैं, न कि शरीर का रूप–रंग या अवस्था।

महाराज दधिपर्ण तो यही अनुभव करते थे कि यह रसोइया नहीं, यह तो राज्य की शोभा है।

महाराज की तरह महारानी भी भोजन के सुमधुर स्वाद को चख कर प्रसन्न होती थीं। उनके मन में बार–बार यही विचार आता था कि यह व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से भले ही लोगों की निगाह में अच्छा नहीं लगता है, परन्तु इसकी कला कितनी उच्चकोटि की है। इसका आँतरिक जीवन कितना पवित्र है। इसमें कितनी शांति और धैर्य है। यह व्यक्ति अपने ढंग का अनोखा ही है। इसका वर्णन मुँह

से नहीं किया जा सकता। जिन सरदारों, अमीर—उमरावों पर जनता के जानमाल की रक्षा करने की जिम्मेदारी है, जब वे भी हाथी के उपद्रव से नगर को नहीं बचा सके, व्यवस्था और शांति कायम नहीं रख सके, तो इसने अपने प्राणों की बाजी लगाकर नगर के संकट को दूर कर दिया। इसका ज्यादा से ज्यादा सत्कार होना चाहिएँ

ऐसा विचार कर महारानी ने किसी एक दिन महाराज दधिपर्ण से कहा—प्राणनाथ ! आप पहले यह घोषणा कर चुके हैं कि हाथी के उपद्रव को शांत करके नगर की रक्षा करने वाले को पाँचसौ गाँव जागीर में देंगे और सर्वस्व देने तक की भी आपने घोषणा की थी, लेकिन सर्वस्व देने की बात अभी पूरी हो सके या न हो सके, परन्तु पाँचसौ गाँव देकर अपने रसोइए का सम्मान करने के लिए स्वागत—समारोह का आयोजन भव्य तरीके से होना चाहिएँ

महाराज दधिपर्ण निष्ठावान व्यक्ति थे। वे अपने वचन को पूरा करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। उनके मन में तामसिक वृत्तियों का अभाव—सा था। इसी कारण वे हाथी के उपद्रव को शांत करने वाले व्यक्ति को पाँचसौ गाँव देने की घोषणा कर सके थे। वैसे तो संकट के समय कोई भी व्यक्ति कुछ भी बोल देता है, लेकिन काम हो जाने के बाद सामान्यता लोग अपनी बात को भूल जाते हैं। अपने वचन पर कायम रहने वाले तो कोई विरले ही होते हैं। सात्विक वृत्ति वाले ही अपने वचन को पूरा करते हैं।

महारानी की बात को सुनकर दधिपर्ण ने कहा—तुमने जो कुछ कहा, वह मेरे ध्यान में है, लेकिन कुछ दूसरे—दूसरे जरूरी कार्यों में लग जाने से अपने वचन को अभी तक पूरा नहीं कर पाया हूँ। सोचता था कि अन्य कामों से निवृत हो जाऊँ, तो एक भव्य समारोह का आयोजन करूं और प्रजा के समक्ष अपने पाकशास्त्री का सम्मान करके पाँचसौ गाँव जागीर में दूं। यदि वे सर्वस्व भी मांगें, तो वह भी मैं देने के लिए तैयार हूँ।

महारानी–आपके विचारों को मैं समझती हूँ। लेकिन अपने पाकशास्त्री को विश्वास दिलाने के लिए जल्दी–से–जल्दी समारोह का आयोजन करके अपने वचन को पूरा कर देने से आपकी कीर्ति में वृद्धि ही होगी। इसलिए यह कार्य जल्दी–से–जल्दी हो जाये, तो अच्छा है।

महाराज दधिपर्ण ने महारानी के विचारों का समर्थन करते हुए अपने वचन की पूर्ति के लिए होने वाले समारोह की तिथि निश्चित करके घोषणा करवा दी, जिसको सुनकर प्रजा अपने राजा के गुणगान करने लगी। निश्चित तिथि पर राजभवन के प्रांगण में सम्मान–समारोह का आयोजन किया गया। राज्य के बड़े–बड़े अधिकारी, प्रमुख नागरिक, सेठ–साहूकार और साधारण जन अपने–अपने योग्य स्थानों पर आ बैठे। महाराज दधिपर्ण ने अपने सिंहासन के पास ही पाकशास्त्री को बैठाया। सभी उपस्थित व्यक्ति महाराज के विचार और घोषणा सुनने की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। सभा की कार्रवाई शुरू होने पर महाराज दधिपर्ण ने अपने भावों को व्यक्त करते हुए कहा–

सज्जनों ! आप लोगों को यह तो मालूम ही है कि नगर में मदोन्मत्त पागल हाथी के छूट जाने से जनता संकट में पड़ गयी थी। हाथी ने कितना नुकसान किया और कितने मनुष्यों की जानें गयीं, इसका चित्र भी आप लोगों के सामने है। बड़े–बड़े वीर उसको पकड़ने का उपाय कर रहे थे, फिर भी वह काबू में नहीं आ रहा था और यमराज की तरह नगर में तबाही मचा रहा था। इससे सारा नगर सूनसान–सा हो गया था। लोग अपने–अपने घरों में भयभीत होकर छिपे हुए थे। ऐसी विकट स्थिति को देखकर मैंने घोषणा की थी कि हाथी को वश में करके नगर में शांति स्थापित करने वाले व्यक्ति को पाँचसौ गाँव इनाम में दूंगा। आपके सामने बैठे इन कुबड़े–से कलावान महापुरुष ने अपने प्राणों का मोह न करके अपने कला–कौशल से हाथी को वश में करके नगर में शांति स्थापित की, मैं अपनी

घोषणा के अनुसार पाँचसौ गाँव इनको जागीर में भेंट करता हूँ। अब हम सभी इन्हें 'शांतिपर्ण' नाम से पुकारें।

इसके साथ ही एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि संकट के समय मैंने सर्वस्व देने की भी घोषणा की थी। मैं इनका स्वागत पाँचसौ गाँव देने से ही नहीं, परन्तु ये और जो कुछ भी लेना चाहें, इसी समय दे सकता हूँ। मैं देने को तैयार हूँ और मुझे देने में खुशी होगी।

महाराज दधिपर्ण के भावों को सुनकर जहाँ दर्शकों में प्रसन्नता छा गयी, वहीं कुबड़े के रूप में बैठे छद्मवेशी महाराज नल गद्गद होकर सोचने लगे कि यह राज्य–सत्ता और संपति विरले ही व्यक्तियों को मिलती है, परन्तु इन विरलों में भी वे व्यक्ति एक–दो ही होते हैं, जो इनमें आसक्त नहीं होते हैं। मनुष्यों में आसक्ति की भावना इतनी प्रबल होती है कि राज्यसत्ता और संपति तो दूर की बात रही, एक झोंपड़ा भी उसके पास होता है, तो वह उसमें आसक्त हो जाता है, परन्तु ये धन्य हैं, जो अपने वचन पर कायम हैं। जब ये सब कुछ देने को तैयार हैं, तो इनकी कुछ परीक्षा भी कर लूं।

इन्हीं विचारों में डूबे हुए महाराज नल चिन्तन करने लगे कि महाराज से क्या मांगें? ये तो वचनबद्ध हैं। चाहूं, तो मैं इन्हें राजपद से च्युत कर सकता हूँ। परन्तु मेरा ऐसा करना गलत होगा। मुझे कुबेर सरीखा नहीं बनना है। उसने तो दुर्नीति से मुझे राजपद से च्युत कर दिया। असल में मुझे उसने च्युत नहीं किया है, किन्तु मैं स्वयं अपने कृत्य से गिरा हूँ। मेरा और दधिपर्ण का कृत्य अलग–अलग है। वे देने को तत्पर हैं और मैंने जुआ खेलकर राज्य को गंवाया है।

इस प्रकार के गंभीर चिन्तन से मन में कुछ निश्चय–सा करके महाराज दधिपर्ण की ओर देखकर वे हंसते हुए बोले–राजन् ! अशांति के समय आपने जो कुछ भी वचन कहे थे, उनको इस समय पालने करने के लिए आप तत्पर हैं, यह प्रसन्नता की बात है। विरले

ही व्यक्तियों में यह बात पायी जाती है। इसके लिए मैं ह्दय से आपका अभिनंदन करते हुए धन्यवाद देता हूँ। परन्तु मैं निवदेन करना चाहता हूँ कि जब आप यह परवानगी देते हैं कि जो चाहो, वही मांग लो, तो एक बार आप पुनः विचार कर लीजिएँ उस समय तो आप संकट के कारण अधीर हो रहे थे और अधीरता की स्थिति में कहे गये वचनों को मैं ठीक नहीं मानता हूँ, परन्तु इस वक्त आप कह रहे हैं कि जो मांगना हो, सो मांगो, तो गंभीरता से चिन्तन कर लेना चाहिएँ यदि मैंने अपनी इच्छा के अनुसार मांग लिया और आप देने में समर्थ नहीं हुए, तो आपकी हंसी होगी और मेरे मन में ग्लानि।

मैं कटुसत्य बोल रहा हूँ। इसे सुनने वाला व्यक्ति भले ही खुश हो या नाराज, परन्तु स्पष्ट कह देना ही ठीक रहता है।

अपने पाकशास्त्री की बात को सुनकर दधिपर्ण जोश के साथ सीने पर हाथ रखकर बोले–आप संकोच क्यों करते हैं? आपको विचार नहीं करना चाहिएँ आप जो चाहें, सो मांग सकते हैं। मैं सर्वस्व देने को तैयार हूँ। मैं राज्यसत्ता और संपत्ति के स्वरूप को समझा हुआ हूँ। ये सब नाशवान पदार्थ हैं। ये किसी के पास टिकने वाले नहीं हैं। इनमें रत रहने वाला व्यक्ति विवेकहीन बनता है, उसका जीवन पतन के गड्ढे में जा गिरता है। मैं चाहता हूँ कि आप जैसे योग्य व्यक्ति राज्य के भार को संभाल लें, तो मैं हल्का हो सकता हूँ। मैं जो कुछ भी कह रहा हूँ, वह सोच–समझकर बोल रहा हूँ। आप यह सारा राज्य संभालिएँ आप मुझे अनुचर रखकर काम करायेंगे, तो भी मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

दधिपर्ण के भावों को सुनकर महाराज नल विचार में पड़ गये कि ये क्या कह रहे हैं ? मैं पाँचसौ गाँवों को लेकर मोह में पड़ गया, तो तामसवृत्ति पुनः सिर पर सवार हो जायेगी। मुझे जमीन–जायदाद वगैरह कुछ भी नहीं चाहिएँ किन्तु जब ये देने को तैयार हैं, तो मुझे कुछ ऐसा मांगना चाहिए, जो हितकारी हो। फिर अपने अंदर कुछ

निश्चय–सा करते हुए वे बोले–महाराज ! आपने मनचाहा मांगने की आज्ञा दी है, तो सबसे पहले आपने मुझे जो पाँचसौ गाँव देने की घोषणा की है, उनको आपके चरणों में भेंट करता हूँ। मुझे जागीर नहीं चाहिए, किन्तु एक बात चाहता हूँ कि सारे राज्य में जुआ, मांस, शराब, चोरी आदि सब कुव्यसनों को बंद करवा दिया जाये। किसी भी व्यक्ति में ये दुगुर्ण न रहें और जीवन नैतिकता–युक्त हो। महाराज नल के जीवन में कुव्यसन अपना तमाशा दिखा ही चुके हैं। उनकी क्या दशा बनी, यह आप जानते हैं। मैं चाहता हूँ कि जैसी उनकी दशा बनी, वैसी अन्यों की न बने। लोग कुव्यसनों में फंसकर अपने जीवन को नष्ट न करें। मेरी अभिलाषा है और मैं मांग करता हूँ कि आपकी प्रजा में कुव्यसनों का प्रचार और प्रसार न रहे।

इस विचित्र मांग को सुनकर महाराज दधिपर्ण अवाक् रह गये। रुपया–पैसा, धन–दौलत तो सभी मांगते हैं, लेकिन ऐसी मांग करने वाले व्यक्ति को तो आज ही देखा है। वे मन में उठने वाले भावों से आश्चर्यचकित हो रहे थे और असमंजस में पड़ गये थे कि यह कैसी वृति? अरे! व्यक्ति एक–दो रुपये का भी लोभ संवरण नहीं कर पाते और छल–बल द्वारा किसी न किसी उपाय से लेना चाहते हैं, लेकिन ये कुछ भी लेने को तैयार नहीं हैं और जो गाँव भेंट में दिये थे, उन्हें तो वापस कर रहे हैं, लेकिन बदले में मांग कर रहे हैं कि जनता में कुव्यसन न रहें। मैं क्या सोच रहा था और क्या हो गया ? मांगा तो कुछ नहीं, किन्तु और भी जिम्मेदारी मेरे सिर पर डाल दी। यह शरीर से तो कुबड़ा और कुरूप दिखता है, परन्तु है कोई विशिष्ट व्यक्ति, इसने अपना जो परिचय दिया है, वह भी शंका में डालने वाला मालूम हो रहा है। खैर! अब इसकी ही मांग को शिरोधार्य करके चलना चाहिएँ वे खड़े होकर बोले–शांतिपर्ण जी ने राज्य में कुव्यसनों के प्रचार–प्रसार को रोकने की जो मांग की है, उनकी यह मांग प्रशंसनीय है। इसकी कीमत धन–दौलत, राज्य–संपति से नहीं आँकी जा सकती, किन्तु इनकी मांग के द्वारा प्रजा को

न्याय–नीति–पूर्वक जीवन जीने का मार्गदर्शन कराने के साथ–साथ मेरी प्रतिष्ठा को ही बढाने का प्रयत्न किया है। इनकी कला तो प्रशंसनीय है ही, लेकिन उससे भी बढ़कर इनकी बुद्धि की प्रशंसा की जानी चाहिएँ मैं इनकी मांग को स्वीकार करते हुए यह घोषणा करता हूँ कि मेरे राज्य में कुव्यसनों को सेवन करने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं रहे। अगर कोई चोरी–छिपे कुव्यसनों का सेवन करते हुए पकड़ा जायेगा, तो वह दंड का भागी होगा।

इस राजाज्ञा को सुनकर सभी लोग महाराज दधिपर्ण की सराहना करने लगे। साथ ही कुबड़े रसोइए कि प्रशंसा में अनेक प्रकार की बातें करते हुए कहने लगे कि ऐसी अनूठी मांग करने वाले विरले ही होते हैं। जैसे–जैसे यह खबर फैलती गयी, वैसे–वैसे सारे राज्य में इस छोर से लेकर उस छोर तक, महाराज दधिपर्ण और उनके रसोइए के अभिनंदन–गीत गाये जाने लगे।

बंधुओं ! दधिपर्ण सरीखे शासक देश को मिल जायें, तो देश का कायापलट ही हो जाये। धन–संपति, सम्मान–शिष्टता का प्रचार होने से देश प्रगति की ओर बढ़ता रहेगा। लेकिन आज तो विश्व की कुछ विचित्र ही स्थिति बन रही है और तामसी वृत्तियों के प्रचार की नयी–नयी योजनाएँ बनायी जा रही हैं। कुव्यसनों को हटाना तो दूर रहा, लेकिन और बढावा दिया जा रहा है। आप कुछ भी कल्पना करें, परन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि शासक और जनता दोनों ही कुव्यसनों को बढ़ावा दे रहे हैं। जनता में हीन–भावना घर कर गयी है, जिससे वह कुव्यसनों को मित्र बनाकर चल रही हैं। तंबाकू, सिगरेट, दारु–मांस आदि वस्तुओं का जिन जातियों में प्रवेश नहीं था, वे जातियाँ भी लुक–छिपकर उनका सेवन कर रही हैं और सेवन करने में अपना गौरव मानती हैं। यह कितनी विडंबना–पूर्ण स्थिति है। शासकों द्वारा भी किसी–न–किसी रूप में तामसिक पदार्थों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिए नये–नये प्रलोभन दिये जाते हैं। दधिपर्ण सरीखे शासक चाहे सारे देश के शासक न हों,

लेकिन प्रत्येक व्यक्ति अपना ही शासक बन जाये, तो कुछ–न–कुछ तामसिक वृत्ति हटेगी, कुछ तो शांति होगी। परन्तु कहें किसे ? आज तो सभी विचित्र निद्रा में सोये हुए हैं। सचमुच में सोये हुए व्यक्ति तो फिर भी जगाया जा सकता है; लेकिन जान–बूझकर सोने वाले व्यक्ति की नींद तो कानों पर नगाड़े पीटने से भी नहीं उड़ती। वैसे ही हालत आजकल के व्यक्तियों की हो रही है।

❖ ❖ ❖

दमयन्ती का स्वप्न–दर्शन

दमयन्ती गहरी नींद में सोई हुई थी। गहरी नींद में सोने के कारण उसे अपने पतिदेव के विचारों और कार्य का कुछ भी पता नहीं लगा कि रात के अंधियारे में भाग्य–विडम्बना क्या–क्या खेल खेल रही है और उसके जीवन में कौन–सा नया पृष्ठ जुड़ने जा रहा है? वह तो इतने दृढ़ विश्वास के साथ सोयी हुई थी कि पतिदेव मेरी रक्षा के लिए जाग रहे हैं और उनके रहते मुझे कोई भी कष्ट नहीं हो सकता। उसने सोचा भी नहीं था कि इस निर्जन वन में अकेली रह जाऊँगी और वज्र जैसा विश्वास कच्चे धागे के समान टूट जायेगा।

तीन प्रहर रात्रि बीत जाने के बाद जब चौथे प्रहर के अन्त में सूर्योदय होने को आया, आकाश में लालिमा छाने लगी, तो दमयन्ती स्वप्न में डूब गयी। उसने स्वप्न में देखा–

एक सुन्दर आम का वृक्ष है, जो अपने घने पत्तों से सुशोभित हो रहा है। वृक्ष पर मोर बैठ बोल रहे हैं और भौंरे मधुर स्वर में गुंजारव कर रहे हैं। उसमें मंजरियाँ फली हुई हैं और फल भी लगे हुए हैं। सुन्दर सलौने फलों से लदे आम के वृक्ष को देखकर वह फल खाने की इच्छा से उस पर चढ़ गयी और मधुर फल लेकर जैसे ही चखने के लिए तैयार हुई कि एक अदृश्य विराट पुरुष ने आकर वृक्ष को जड़–मूल से उखाड़ दिया और उसे नीचे पटक दिया। जैसे ही आम के वृक्ष के साथ नीचे गिरी कि दमयन्ती की नींद टूट गयी और वह तंद्रा में आँखें मींचे विचार में पड़ गयी कि क्या मैं स्वप्न देख रही थी?

यह कैसा स्वप्न था? मैं तो वृक्ष पर चढ़कर फल खाने की कोशिश कर रही थी कि यकायक उसे किसने गिरा दिया? वह हड़बड़ा कर एकदम बैठ गयी।

हड़बड़ाहट में एक क्षण के लिए स्तब्ध–सी रहने के बाद आलस्य दूर होने पर जैसे ही दमयन्ती की आँखें खुलीं, तो उसने देखा कि वहाँ न तो कोई आम का वृक्ष है और न किसी ने उसे गिराया ही है, परन्तु जिस शिलातल पर वह सोयी हुई थी, उसी पर बैठी है और जिस शिला पर पतिदेव सोये हुए थे, जब उसकी नजर उधर गयी, तो पतिदेव वहाँ नहीं दिखे। फिर वह चारों ओर देखकर विचारों में डूबी हुई सोचने लगी कि अहो सूर्योदय होने वाला है, उसकी लालिमा चारों ओर फैल रही है और मैं अभी तक सोती ही रही। ऐसी गहरी नींद मे सोयी कि कुछ पता ही नहीं लगा कि कितना समय हो गया है? सोते समय मैंने कहा था कि कुछ देर सोने के बाद मैं जाग जाऊँगी और उसके बाद आप सो जाना, मैं चौकीदारी करूंगी। मैंने यह भी कहा था कि कदाचित् मुझे गहरी नींद आ जाये, तो आप जगा देना, मैं उसी समय जाग जाऊँगी।

अरे! क्या सारी रात बीत गयी। पतिदेव ने मुझे जगाया नहीं या मैं जाग नहीं पायी। ओह! बड़ी गलती हो गयी। मैं तो सारी रात पड़ी–पड़ी सोती रहूँ और वे जागें, इससे उनके स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता है। मैं साथ आयी, तो पतिदेव को सहयोग देने के बजाय उन्हें परेशानी में डाल रही हूँ। सम्भव है, मेरी इस लापरवाही के कारण उनके मन में कुछ विचार आ गया हो और वे यहाँ से उठकर इधर –उधर चले गये हों। वे सोचते होंगे कि यह कैसी आलसी है कि भंयकर जंगल में आकर भी कुछ ख्याल नहीं रखती, राजभवन जैसा यहाँ भी समझ रही है।

इन्हीं विचारों के साथ कुछ और सचेत–सी होकर दमयन्ती ने आस–पास नजर दौड़ा कर देखा कि पतिदेव कहीं नहीं दिखे। तब

गुफा से बाहर निकलकर उसने कुछ घबराहट के साथ इधर देखा, उधर देखा, नीचे देखा, ऊपर देखा और चारों ओर जहाँ तक नजर गयी, वहाँ तक कोने–कोने को देख डाला, परन्तु पतिदेव दिखायी नहीं पड़े। ऐसी स्थिति में वह सोचने लगी कि यह क्या हुआ? वे कहाँ गये? कुछ समझ में नहीं आ रहा है। फिर उसने भय व घबराहट के साथ चारों ओर ढूंढना शुरू किया, परन्तु जब कहीं भी उनका पता नहीं लगा, तो हारकर और हथेली पर सिर पर रखकर वह सोचने लगी कि क्या मेरे पतिदेव ऐसी दशा में मुझको छोड़कर जा सकते हैं? नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता।

इस जीवन में विविध प्रकार के प्रसंग आते हैं, अनेक घटनाएँ घटती हैं। यदि व्यक्ति के जीवन में सुख ही सुख के अवसर आते रहें, तो दुःख का अनुभव ही नहीं होगा और यदि दुःख ही दुःख देखे, तो सुख की अनुभूति ही नहीं हो सकेगी। इस जीवन में दोनों ही पक्ष हैं। आज मेरे जीवन में प्रतिकूलता का पक्ष प्रबल है। इसी के कारण मुझे वन में आना पड़ा है, परन्तु खुशी इस बात की है कि यहाँ आने पर भी पतिदेव की पवित्र मुद्रा और स्वर्णिम जीवन का आह्लाद प्राप्त है। लेकिन क्या अब वह आह्लाद की स्थिति भी छूट रही है, दूर हट रही है? क्या मैं यह कल्पना कर लूं कि पतिदेव मुझको इस जंगल के बीच अकेली छोड़कर चले गये हैं ? कल्पना, कल्पना ही रहे और मेरा ऐसा सोचना गलत साबित हो। लेकिन मुझे छोड़कर यदि वे चले गये हैं, तो यह मेरे साथ क्रूर मजाक माना जायेगा। यह जंगल है और जंगल में शेर चीते आदि भी हैं। यद्यपि पतिदेव ने कहा अवश्य था कि इस जंगल में ऐसे जानवरों की कमी है, लेकिन आखिर जंगल तो जंगल ही है। ज्यादा नहीं होंगे, किन्तु बिल्कुल ही नहीं होगे, यह कैसे कहा जा सकता है? हिंसक जानवर तो जंगलों में ही रहते हैं। ऐसे जंगल के बीच पतिदेव मेरा त्याग करें, ऐसा मैं सोच भी नहीं सकती।

मैं तो कुछ और सोचती हूँ कि सूर्योदय हो जाने से वे वन की शोभा को देखने के लिए कहीं इधर–उधर चले गये होंगे अथवा पास

में बहते झरने के निकट प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होने गये होंगे। लेकिन मैं इतने दिनों से देख रही हूँ कि तालाब पर जाना है या फलफूल लाने हैं, तो वे मुझे साथ लेकर गये हैं, अकेले तो कहीं नहीं गये। वे प्राणों से भी अधिक मेरा ख्याल रखते हैं, तो मुझे सोती हुई छोड़कर अकेले कैसे जा सकते हैं? सम्भव है, उन्होंने जाने से पहले जगाने का प्रयास अवश्य किया होगा और अपनी बात भी कही होगी, लेकिन नींद में होने के कारण उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया जा सका हो। यह मेरी गल्ती हुई कि मैं सोती रही।

इस सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि किसी देवी ने उनके रूप–लावण्य पर मोहित होकर उन्हें भ्रम में डाल दिया हो अथवा उनको फुसलाने की कोशिश की हो और फुसलाने पर भी वे किसी प्रलोभन में न फंसे हों, तो अपने शक्तिबल से उन्हें किसी संकट में डाल दिया हो। मैं जाऊँ और उठकर देखूं तो सही, कि वे हैं कहाँ पर?

ऐसा सोचकर वह उठी और साहस का सहारा लेकर झाड़ी–झाड़ी में झांकने लगी, किन्तु कहीं पर भी पतिदेव के नहीं दिखने पर विचार में पड़ गयी कि आखिर वे गये किधर हैं? सम्भव है कि शारीरिक शंका की ताकीदी के कारण मुझे जगाये बिना ही सरोवर पर चले गये हों। वह विचारने लगी कि कहीं मेरे पतिदेव का अपहरण तो नहीं कर लिया है।

इस तरह की विविध कल्पनाओं में डूबी हुई दमयन्ती आक्रन्दन करते हुए इधर–उधर घूमने लगी, परन्तु कहीं भी उसे पतिदेव नहीं दिखे, तो वह वन के वृक्ष, लता, शिला आदि यहाँ तक कि वन के कण–कण को अपने पति को बताने के लिए सम्बोधित करती हुई कभी इधर, तो कभी उधर, कभी इस वृक्ष, तो कभी उस पहाड़ के ऊपर भटकने लगी। उसके रोने में इतनी करुणा थी कि कोई भी सुहृदय व्यक्ति सुनकर पसीज सकता था, परन्तु पर्वतों में रंचमात्र की

प्रतिक्रिया नहीं हुई। हाँ, इतना जरूर हुआ कि प्रतिध्वनि ने जंगल के कोने–कोने को गुंजायमान बना दिया और जब किसी ने भी अपना मौन नहीं खोला और तटस्थ दर्शक की तरह सब खड़े रहे, तो वह चलते–चलते थक जाने से और साहस का सहारा भी न रहने से हताश होकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गयी।

वृक्ष की छाया में बैठने से भी उसे सांत्वना तो नहीं मिली, वरन् घबराहट के मारे हृदय और अधिक कांपने लगा, उसकी धड़कनें बढ़ गयीं। न तो उसके तन को चैन था और न मन को शांति, किन्तु दुःख में डूबी हुई वह पुनः सोचने लगी कि क्या किसी राक्षस ने आकर मेरे पति का अपहरण तो नहीं कर लिया है? लेकिन वे तो बहुत वीर हैं, ऐसा होना सम्भव तो नहीं लगता। मेरा दिमाग ही काम नहीं कर रहा है। मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूं? पिछली रात मैंने जो स्वप्न देखा था और जब मैं मधुर फल खाने की कोशिश कर रही थी कि किसी व्यक्ति ने आकर उस वृक्ष को उखाड़ कर फेंक दिया, तो क्या वह स्वप्न इसी बात की सूचना देने के लिए तो नहीं आया था? मैं वृक्ष से नहीं गिरी, एकदम आसमान से गिर पड़ी हूँ। मेरी यह विपत्ति आकाश से पाताल में गिरने के ही समान है। किसके सामने मैं अपनी विपदा का जिक्र करूं? यह मेरी मानसिक कल्पना है कि किसी ने उनको भ्रम में डाल दिया हो, अपहरण कर लिया हो, लेकिन वे सक्षम हैं, समर्थ हैं। उनको कोई लुभा नहीं सकता है, कोई देवी भ्रमित नहीं कर सकती है। परन्तु वे गये कहाँ हैं? कहीं मेरी परीक्षा लेने के विचार से झाड़ियों के बीच में तो नहीं छिप गये हैं। लेकिन मैंने तो एक–एक झाड़ी देख ली, छिपे भी होते तो अवश्य दिखायी दे जाते। मैं कितनी देर से बिलख रही हूँ और वे यहीं कहीं आसपास में छिपे होते, तो मेरी दशा देखकर कभी के सामने आ जाते। आखिर मेरे पतिदेव गये कहाँ ?

कुछ देर तक घोर निराशा में गुमसुम बैठने के बाद रोते हुए दमयन्ती प्रलाप करने लगी—हा नाथ ! हा स्वामिन् ! तुम कहाँ चले

गये? जल्दी चले आओ, तुम्हारे वियोग में मेरा हृदय टुकड़े–टुकड़े हुआ जाता है। बहुत दिल्लगी अच्छी नहीं होती और कहीं इसी हंसी–दिल्लगी में मेरे प्राण ही न निकल जायें।

विचारों के प्रवाह में बहते–बहते वह पुनः सोचने लगी कि सम्भवतः पतिदेव ने ऐसा विचार किया होगा कि मेरी धर्मपत्नी में कितना साहस और धैर्य है, इसकी परीक्षा कर लेनी चाहिएँ परन्तु नाथ! मेरे धैर्य का धागा इतना कमजोर नहीं है। जिन्दगी भर कष्ट आयें, तब भी वह भंग होने वाला नहीं है, शांति में बाधा आने वाली नहीं है। कौनसा मार्ग शांति में बाधक है और कौनसा साधक है, इसे मैं अच्छी तरह समझती हूँ। आज इस विकट परिस्थिति में भी सोच रही हूँ कि ये मेरे धैर्य की परीक्षा के क्षण हैं, मेरा धैर्य टूट जायेगा – ऐसा मत समझिएँ वह तो और भी मजबूत बन रहा है। मैं कर्तव्य समझकर आपकी सेवा में तत्पर हूँ तथा चाहती हूँ कि और भी कठिन–से–कठिन परिस्थिति में सेवा करूं। अब आप मेरी और ज्यादा परीक्षा न लें। आप जहाँ भी छिपे हों, सामने आ जाइएँ अब अपनी सहधर्मिणी को और अधिक न कलपायें।

इधर–उधर घूमते–फिरते जब दमयन्ती को कुछ भी दिखायी नहीं दिया, तो वह पुनः गुफा में आ पहुँची। गुफा में आकर इधर –उधर देखते हुए जब पतिदेव के वस्त्रें को सम्भालने के लिए उठी और शिला पर नजर गयी, तो देखा कि उसकी साड़ी के टुकड़े पर कुछ लिखा हुआ रखा है। उसे देखकर दमयन्ती ने समझा कि पतिदेव कहीं बाहर गये हैं और मुझे नींद से जगाना अच्छा नहीं समझ कर कर्तव्य–पालन की दृष्टि से मेरे लिए कुछ संकेत दे गये हैं।

दमयन्ती ने जिज्ञासा के साथ वस्त्र–पत्र को उठाया और लेकर पढ़ा। पत्र के भावों को पढ़कर दमयन्ती ने विचार किया कि उनका न तो किसी ने अपहरण किया है और न उन्हें देव–देवी ने सताया है, परन्तु अपनी स्थिति और मेरे कर्त्तव्य को समझाया है।

पतिदेव ने जो कुछ भी किया है, वह सोच–समझकर ही किया है। मैं यदि पहले ही उनके अभिप्राय पर ध्यान कर लेती और पिता के यहाँ चली जाती, तो आज यह दयनीय दशा नहीं आती। पतिदेव का इसमें कोई दोष नहीं है, उन्होंने तो शुरूआत में ही संकेत दिया था कि वन का वातावरण दूसरे ही तरह का होता है, वहाँ की परिस्थिति में तुम रह न सकोगी, परन्तु मैं समझती रही कि वे ऐसे ही कहते रहे हैं। मेरे कारण न तो वे रात को सो पाते थे और न अपने कष्ट दूर करने के लिए कोई पुरुषार्थ ही कर सकते थे। फिर भी उनकी कितनी महानता है कि मुझे सुरक्षित स्थान पर छोड़कर गये हैं और यह संकेत दिया है कि यह जंगल इतना भयावना नहीं है। यहाँ से दो रास्ते निकलते हैं, जिन पर मनुष्यों को आना–जाना चालू रहता है। ऐसे स्थान के अलावा मेरे पतिदेव छोड़ते भी छोड़ते कहाँ? बहुत सोच–समझकर दीर्घ दृष्टि से उन्होंने सही तरीके से अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया है। अब अपने मार्ग का मैं स्वयं निर्णय करूंगी। इतने दिनों तक तो मैं अपनी शक्ति की परीक्षा नहीं कर पायी थी और दूसरे पर विश्वास रखकर चल रही थी, किन्तु अब मैं अकेली हूँ, अपना निर्णय स्वयं मुझे ही करना है और ऐसा सोचते–सोचते जब पतिदेव के चले जाने का स्मरण हो आया, तो वह अपना साहस व धैर्य खोकर पुनः मूर्च्छित हो गयी।

दमयन्ती की यह मूर्च्छा अधिक समय तक नहीं रह सकी। शीतल मंद–मंद मधुर बहती पवन से जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तो सचेत होकर वह पुनः सोचने लगी कि मैं यह क्या कर रही हूँ ? निश्चय तो मैंने कुछ दूसरा ही किया था और इतनी ही देर में अपना साहस, धैर्य आदि सब खो बैठी। क्या मैं इस प्रकार वीरपत्नी और क्षत्रिय–कन्या कहला सकती हूँ ? अब मुझे यहाँ ज्यादा देर न ठहर कर चल देना चाहिए। पत्र द्वारा मेरे स्वामी ने मुझे पिता के घर या ससुराल जाने की आज्ञा दी है। मेरा पिता के यहाँ चले जाना ही उचित है। फिर दमयन्ती अपने पिता के नगर को जाने के लिए

वटवृक्ष की बगल में से जाने वाले मार्ग पर तेजी से चल पड़ी।

सुकुमार दमयन्ती जंगल में अकेली चलती हुई पद–पद पर ठोकरें खाने लगी, रह–रहकर पैरों में कांटे चुभने लगे। पहले पति का साथ होने से उनका मुखचन्द्र देख–देखकर वह इन कष्टों की बात भी अपने मन में नहीं आने देती थी, लेकिन अब यही कष्ट उसे रह–रहकर पति की याद दिलाते हुए दुगुना दुःख देने लगे। जो किसी दिन राज–राजेश्वर की पत्नी थी, वही अब एक साधारण भिखारिन की भांति रास्ता तय करने लगी।

❖ ❖ ❖

बनजारों के साथ

चित्त तो विह्वल था ही, जिससे दमयन्ती को अपने तन की भी सुध नहीं थी। तेजी से चलने के कारण सिर के केश हवा में इधर –उधर उड़ रहे थे। पैर भी अटपटे–से पड़ रहे थे। चलते–चलते उसने देखा कि सामने से उसी रास्ते पर रथ, बैल, घोड़ों आदि के साथ मनुष्यों का एक समूह चला आ रहा है, जिसे देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और वह तेजी से कदम बढ़ाते हुए आगे चली, तो यकायक जन–समुदाय में से कुछ लोगों की नजर दमयन्ती पर पड़ी। देखने वाले विचार में पड़ गये कि यह कौन है? क्या यह वनदेवी है या अन्य कोई? यह देख उनमें से कुछ खड़े हो गये, कुछ पीछे भाग गये और कुछ रंग–ढंग देखकर विचार में पड़ गये। कुछ व्यक्तियों ने भागकर अपने मुखिया को खबर दी कि इस मार्ग पर देवी का प्रकोप है। हमने उसे विकराल रूप में देखा है और वह इधर ही आ रही है। काफिले को आगे बढ़ायें या क्या करें?

अपने आदमियों की सूचना को सुनकर मुखिया ने सोचा कि यह कौनसी देवी है, जिससे मेरे समूह के आदमी डर रहे हैं? यह देखने के लिए आगे आया। जैसे ही उसने देखा, तो देखकर स्तब्ध –सा रह गया और निर्णय नहीं कर पाया कि यह देवी है या और कोई ?

दमयन्ती ने जब यह देखा कि मेरे कारण सामने से आने वाले व्यक्ति भयभीत हो रहे हैं, कुछ खड़े होकर इधर देख रहे हैं और कुछ

पीछे भाग रहे हैं, तो सोचा कि मैं इनको आवाज लगाकर आश्वस्त कर दूं, जिससे ये डरें नहीं। फिर उसने हाथ ऊँचा करके आवाज लगायी–आप लोग डरें नहीं, मैं भी आप जैसी ही मनुष्य हूँ। मैं आपकी बहिन हूँ।

आवाज सुनकर डरपोक व्यक्ति जो अभी भी खड़े–खड़े देख रहे थे, वे भी इधर–उधर पीछे की ओर भाग चले। इस स्थिति को देखकर मुखिया बोला–रुको, रुको डर क्यों रहे हो? यदि यह देवी भी है, तो इतने बड़े समूह के सामने क्या कर सकती है? देखो, वह आवाज लगाकर हमें शांत रहने का संकेत कर रही है। इसलिए डरना बेकार है। तुम लोग कैसे पुरुष हो, जो बिना कुछ विचार किये ही भाग रहे हो? मुखिया की बात सुनकर भी जब डरकर भागने वाले नहीं रुके, तो वह साहस के साथ आगे बढ़ा और उसने शोक–विह्वल दमयन्ती को देखा। उसकी सौम्य मुखमुद्रा और स्थिति को देखकर उसने पूछा–कौन हो तुम और कहाँ से आ रही हो ? वनदेवी हो या कुलदेवी ? अपने बारे में पूरी बात बताओ।

दमयन्ती – भाई! मैं देवी–देवता कुछ भी नहीं हूँ। आप लोग भ्रम में न पड़ें। मैं भी आप सरीखी साधारण मनुष्य हूँ।

दमयन्ती की वाणी को सुनकर मुखिया सोचने लगा कि वास्तव में कोई कुलवंती नारी है। इसके चेहरे, रहन–सहन, बोलचाल से मालूम होता है कि यह किसी बड़े घर में जन्म लेनेवाली महिला है, परन्तु परिस्थितिवश इस जंगल में भटक गयी है। यह कोई विपदा की मारी है। कभी–कभी दुष्ट दुराचारी बदमाश लोग स्त्रियों को सताने की दृष्टि से उन्हें जंगल में छोड़ देते हैं। शायद इसकी भी यही दशा हुई होगी। अतः वह सांत्वना देते हुए बोला–बहिन! घबराओ नहीं। अब तुम्हें कोई डराने वाला नहीं आ सकता है और न कुछ कर ही सकता है। अगर किसी बदमाश ने कुछ हरकत की भी, तो उसे ठीक कर दिया जायेगा। फिर वह अपने साथियों की ओर

देखकर बोला–सब लोग यहीं रुक जाओ। आज हम यहीं पर विश्राम करेंगे।

मुखिया की आज्ञानुसार वहीं पास में ठहरने योग्य छायादार स्थान देखकर पड़ाव डाल दिया गया। भागने वालों ने जब देखा कि हमारे सब साथी रुक गये हैं और कुछ भी गड़बड़ी नहीं हुई है, तो वे भी लौट आये। लौटकर आने के बाद जब उन्होंने दमयन्ती की सौम्य मुखमुद्रा को देखा, तो वे सोचने लगे कि इसके चेहरे पर कितना तेज झलक रहा है, यह कोई देवी–देवता नहीं है, किन्तु हम जैसी मनुष्य ही है। वे मन ही मन पछताने लगे कि वहम से हमने कुछ का कुछ समझ लिया।

काफिले के विश्राम की योग्य व्यवस्था हो जाने के बाद मुखिया ने दमयन्ती के पास आकर प्रणाम करते हुए पूछा–हे महिमामयी देवी ! अपना परिचय दीजिए कि आप कहाँ की रहने वाली हैं, कहाँ जन्म हुआ है और कहाँ विवाह हुआ है? किसने आपको दुःख दिया है और इस जंगल के बीच कैसे आयीं तथा अब कहाँ जा रही हो?

मुखिया की बात सुनकर दमयन्ती ने सोचा कि यह कोई बनजारों का समूह मालूम होता है और यह उसका प्रमुख है, जो इतने बड़े समूह को साथ लेकर व्यापार करने निकला है। रक्षा के लिए नौकर–चाकर, सैनिक आदि भी साथ में हैं। इसकी वाणी में गंभीरता है और बोलचाल, चेहरे–मोहरे से भव्य मालूम हो रहा है। फिर भी यकायक किसी पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिए और अभी यहाँ अपना सही परिचय देने की जरूरत भी नहीं है। अतः कुछ ऊपरी तौर पर अपना परिचय दे दूं। ऐसा सोचकर एक लम्बी सांस लेती हुई वह मुखिया की ओर देखकर बोली–भाई! अपना परिचय क्या दूं? मैं भी आप जैसी ही मनुष्य हूँ और जन्म आदि के बारे में क्या पूछते हो, जहाँ जन्म होना था, सो हो गया और ससुराल बननी थी, सो वह भी बन गयी। उनकी याद करने से भी अभी कौनसा फायदा होने

वाला है? इस समय तो ससुराल या पीहर, जो कुछ भी है, तो यह जंगल है। मैं अकेली हूँ और इस जंगल को पार कर कुंडिनपुर जाना चाहती हूँ। दया करके आप मेरी मदद कीजिए, जिससे दुष्ट बदमाशों से मेरी रक्षा हो सके और शांति के साथ कुंडिनपुर पहँच सकूं।

दमयन्ती की बात सुनकर वह समझ गया कि यह बड़ी चतुर महिला है। इसने तो सामान्य–सी बात कह दी, किन्तु अपने परिचय के बारे में एक शब्द भी नहीं बताया। अतः उसने पुनः दमयन्ती से अपना विशेष परिचय देने के लिए कहा कि बहिन! आप जंगल में कैसे आयीं, साथ में कोई है या अकेली हो? जंगल में भटकने का क्या कारण बना या किसी ने अपहरण कर लिया है? देवी! अपनी पूरी हकीकत बताओ, तो समझ में आये कि हम लोग आपकी और क्या विशेष सहायता कर सकते हैं ?

दमयन्ती–मैं क्या कहूँ ? किसको दोष दूं ? यह सब मेरा दोष मेरा ही है। मैंने पूर्वजन्म में ऐसे क्रूर कर्म किये कि जिनका फल भोग रही हूँ और इस विकट वन में अकेली भटक रही हूँ। मैं बड़े परिवार में जन्म लेकर सुखपूर्वक रही। बड़े घर में विवाह हुआ और पतिदेव भी सब तरह से शांति देने वाले हैं। वे तो मेरा भला करने वाले थे, यह सब कुछ होते हुए भी अब मैं अकेली रह गयी, तो यह सब कर्मों का खेल है।

दमयन्ती के इन मार्मिक व दुःख भरे शब्दों को सुनकर मुखिया ने सोचा कि अब इससे और ज्यादा पूछताछ करना ठीक नहीं है, किन्तु इस दुःखी बहिन को तसल्ली देना, शांति पहुँचाना और इसके जीवन की रक्षा करना मेरा परम धर्म है। वह बोला–बहिन! तुमने जो परिचय दिया, उससे मैं सब समझ गया हूँ। अब मुझे और कुछ नहीं पूछना है, मुझ पर विश्वास रखो। मैं आपका भाई हूँ और हर प्रकार से आपकी रक्षा करना चाहता हूँ। अब आपको अकेली छोड़कर इस जंगल में नहीं भटकने दूंगा और जहाँ भी आप जाना चाहेंगी, वहाँ पहुँचाने की कोशिश करूंगा।

दमयन्ती ने जब से राजभवन छोड़ा था, तब से उसने भरपेट भोजन नहीं किया था, जिससे उसका शरीर कुछ दुबला और कमजोर–सा हो गया था। इस स्थिति को देखकर मुखिया ने सोचा कि बहिन कई दिन की भूखी–प्यासी मालूम पड़ती है। कपड़े भी जगह–जगह से फटे हुए हैं और वन में भटकने से घबरायी हुई है तथा थकावट तो इसके चेहरे पर झलक ही रही है। इसलिए अब इसके खाने–पीने आदि का प्रबन्ध करना चाहिएँ फिर उसने नौकर को पहनने योग्य अच्छे वस्त्र व भोजन आदि लाने के लिए कहा।

आज्ञानुसार नौकर ने जब भोजन, वस्त्र आदि लाकर दमयन्ती के सामने रखे, तो मुखिया ने कहा–बहिन! तुम स्नान आदि करके भोजन कर लो।

दमयन्ती ने मुखिया की बात सुनकर सोचा कि मुझे इन सब चीजों की जरूरत नहीं है। मैं अच्छे वस्त्राभूषण पहनूं और यह सुस्वादु भोजन करूं, यह मेरे योग्य नहीं है। मेरे पति तो न जाने जंगल में कहाँ भटक रहे होंगे? जैसे मैं सुकोमल हूँ, वैसे ही वे भी सुकुमार हैं। उनकी गैर–मौजूदगी में ऐसा सरस भोजन करना और सुन्दर वस्त्र पहनना मेरे लिए उचित नहीं है। फिर मुखिया की ओर देखकर वह बोली–यह आपकी कृपा है कि आपने मेरे लिए सुन्दर वस्त्र, भोजन–सामग्री मंगवायी है, परन्तु मुझे स्नान–श्रृंगार आदि की जरूरत नहीं है। मैं पतिदेव के वियोग में न तो इतना बढ़िया भोजन कर सकती हूँ और न ये सुन्दर वस्त्र ही पहनूंगी। मैं तो भोजन करने से पहले अपनी आत्मा को खुराक देना चाहती हूँ। इसके लिए कोई एकान्त स्थान मिल जाये, तो अच्छा, जिससे मैं धर्म की आराधना कर लूं और फिर शरीर को खुराक देने के लिए भोजन करूंगी।

बन्धुओं! यह सब कौन सोच सकता है? यह सब वे ही सोच सकते हैं, जिन्होंने अपने जीवन का महत्त्व समझा है। वे किसी भी परिस्थिति में आत्मा को नहीं भूलते हैं। दमयन्ती भूखी है, उसे कभी

आधा पेट भरने जितना मिला, तो कभी वह भी नहीं मिला, लेकिन उस स्थिति में भी वह आत्मा का ध्यान करना न भूली, तो आज आत्मा को खुराक देना कैसे भूल सकती थी ?

दमयन्ती की बात को सुनकर मुखिया और उसके आस–पास खड़े अन्य व्यक्ति अवाक्–से रह गये। वे सोचने लगे कि यह कोई सती–साध्वी महिला–रत्न है, जो इतनी संकटपूर्ण स्थिति में भी धर्म को नहीं छोड़ना चाहती है। जब हमें ऐसी धर्मानुरागी सती की सेवा करने का सौभाग्य मिला है, तो हमें उससे लाभ उठाना चाहिएँ फिर मुखिया ने नौकर को एक अलग एकान्त स्थान बनाने के लिए कहा तथा दमयन्ती की ओर देखकर बोला–बहिन! हम आपकी इच्छा के विपरीत कुछ भी काम नहीं करना चाहते। आपको जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, उन सब का प्रबन्ध हो जायेगा।

एकान्त स्थान में पहुँचकर दमयन्ती नवकार–मन्त्र का जाप करके आत्म–चिन्तन में लीन हो गयी कि हे आत्मन्! अपनी स्थिति को सम्भाल कर चल और विषय–विकारों में फंसने के लिए लालायित न हो। तू ही मेरी सहायता करने वाली है। जिसके पास तू रहती है, समग्र संसार उसका परिवार बन जाता है। फिर वह सोचने लगी–दुनिया के लुभावने दृश्य अब मुझे आकर्षित नहीं कर सकते। यदि अंतर् की शांति जागृत न होती, तो जहाँ भी जाती, वहीं दुःखी हो जाती। यह व्यापारी भाई मेरे हितैषी बने हैं, तो मेरे इस हाड़–मांस के शरीर को देखकर नहीं, किन्तु अंतर् के चैतन्य गुण को देखकर बने हैं। ये गुण प्रतिदिन बढ़ते रहें, मुझे इसका ध्यान रखना चाहिएँ किन्तु मेरे सिर पर अभिमान का नशा नहीं आना चाहिए कि लो, मेरे पति छोड़कर चले गये, तो क्या, दूसरे लोग मेरे सहायक बन गये, मेरा सम्मान करने लगे। यदि मैं अपने कर्तव्य को भूल गयी, तो मेरी आत्मा की स्थिति बद से बदतर बन जायेगी।

इस प्रकार आराधना, चिन्तन करने में एक घंटे से भी अधिक समय बीत गया और जब साधना पूरी करके दमयन्ती बाहर आयी, तो

समूह के सभी व्यक्ति टकटकी लगाकर उसकी ओर देखने लगे कि यह सौम्य सती पवित्र आत्मा हमारे लिए श्रद्धा की केन्द्र है। दमयन्ती जब से साधना करने एकान्त स्थान में गयी थी, तभी से वे अपना खाना–पीना भूलकर एक दूर स्थान पर बैठे–बैठे सोच रहे थे कि वह देवी पुनः हमारे सामने आये, जिससे कि हम दर्शन कर अपने नेत्र पवित्र कर लें। फिर इसके भोजन कर लेने के बाद हम लोग भी भोजन करें। अतः जैसे ही दमयन्ती बाहर आयी, तो सभी ने निवेदन किया–अब आप भोजन कीजिएँ

सामने रखे भोजन की ओर देखकर दमयन्ती ने अपने स्वभाव के अनुसार कहा–आप लोग मेरे लिए यह तरह–तरह के व्यंजन लाये, सो ठीक है, लेकिन मुझे इनकी जरूरत नहीं है। ये मेरे लिए उपयोगी नहीं हैं। इसके बाद एकान्त स्थान में बैठकर भोजन करते हुए उसने सोचा कि ये लोग मुझे कितनी शांति और सहायता दे रहे हैं।

भोजन कर लेने के बाद वह मुखिया के पास आकर बोली–आप मेरे धर्मपिता हैं। इस वन के बीच आपने मेरी जो सहायता की है, मैं उसका उपकार कभी भूल नहीं सकती। इसका बदला मैं कैसे चुकाऊँ? मैं चौबीसों घंटे अपने को काम में लगाये रखना चाहती हूँ, क्योंकि बेकार बैठने से मन में अच्छे–बुरे सभी तरह के विचार आते रहते हैं, जिससे आत्मा की शांति भंग होती है, इसीलिए मुझे भी सेवा करने के लिए कुछ काम बताने की कृपा करें।

मुखिया–काम करने के लिए नौकर–चाकर हैं ही। हम तो यही चाहते हैं कि आप अपने आध्यात्मिक आचार–विचार व उपदेश द्वारा हमें सन्मार्ग के दर्शन कराती रहें। ऊपरी सेवा करने वाले तो बहुत से मिल जायेंगे, लेकिन आत्मा की सेवा करने वाले बिरले ही मिलते हैं। अन्दर की शांति की कला सिखाने वाली सेवा महत्त्वपूर्ण सेवा है। अतः इस बहुत बड़ी सेवा का भार आपको सौंपता हूँ।

मुखिया की बात सुनकर दमयन्ती ने सोचा कि इनका कहना तो ठीक है, फिर भी समय का सदुपयोग करने के लिए दूसरे काम भी करने चाहिए और उसने भोजन बनाना, बच्चों को बहलाना आदि कार्यों में अपने आपको लगा दिया। छोटे–छोटे बच्चों का तो इतना आकर्षण हो गया कि वे हर समय दमयन्ती को ही घेरे रहते थे। वे खेलते–कूदते थे, तो उसके आसपास, आपस में लड़–झगड़ कर फरियाद करने आते, तो उसके पास। दमयन्ती कहीं जाती, तो साथ जाते। इस दृश्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि वात्सल्य–देवी की प्रजा आनन्द में डूबी–डूबी किलोलें कर रही है। प्रत्येक व्यक्ति से – चाहे वह बड़ा हो या छोटा, आदर देते हुए बातचीत करती। यह सब करते देख यदि कोई कहता कि बहिन! इन कार्यों के लिए तो नौकर–चाकर हैं ही और वे सब अपना–अपना काम करते ही हैं, तो वह उससे कहती कि यह भी तो आध्यात्मिक सेवा है और दूसरों को यह शिक्षा मिलती है कि कार्य को विवेकपूर्ण किस तरह से किया जाना चाहिएँ

इस तरह दिन बीतते–बीतते वर्षा ऋतु आ पहुँची और एक दिन आँधी, तूफान के साथ जोरदार वर्षा हो जाने से सब रास्ते रुक गये। इस स्थिति को देखकर यह सोचा गया कि जब तक वर्षा का जोर कम न हो और जमीन सूख न जाये, तब तक यहीं रहना ठीक है।

दमयन्ती ने सोचा कि इन लोगों के साथ रहने से मुझे कुछ भी असुविधा नहीं है, फिर भी ये लोग तो व्यापार के लिए निकले हैं और जगह–जगह रुकते हुए मौका देखकर ही आगे बढ़ेंगे। यदि मैं इनके साथ–साथ चलती रही, तो न मालूम कब अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचुंगी। मुझे अपने पतिदेव का पता लगाना है और पिता के यहाँ पहुँचने पर ही उनका पता लग सकेगा। क्या करूं? मुझे तो जल्दी से जल्दी अपने पिता के घर पहुँच जाना चाहिएँ वह मुखिया से बोली–भाई! मुझे यहाँ रहने और आपके साथ चलने में किसी प्रकार

की असुविधा नहीं है, लेकिन मैं जल्दी से जल्दी नगर में पहुँच जाना चाहती हूँ। इसलिए ऐसा प्रबन्ध कर दीजिए, जिससे वहाँ जल्दी पहुँच सकूं।

मुखिया ने दमयन्ती की बात को सुनकर कहा–बहिन बरसात रुकने पर थोड़ी जमीन सूख जाने के बाद यहाँ से आगे चल देंगे और जल्दी से जल्दी आपको नगर में पहुँचाने की कोशिश करेंगे। बरसात हो जाने से चलने में बाधा आ गयी है।

इस पर दमयन्ती ने पुनः सोचा कि इन लोगों का कहना तो ठीक है और पहले मैं भी ऐसा सोचती थी कि अपने गन्तव्य स्थान पर सुरक्षित पहुँच सकूंगी और जब यह सहारा मिल गया, तो इसको तोड़ना ठीक नहीं है। परन्तु दूसरी ओर यह भी सोचती हूँ कि इनके साथ रहने से मुझे अपने स्थान पर पहुँचने में काफी समय लग जायेगा। मुझे जल्दी पिता के घर पहुँचना है, तो अच्छा होगा कि मैं सहारे को छोड़कर जल्दी से जल्दी पहुँचने के लिए अकेली ही चल पड़ूं और ऐसा सोचकर वह पंच–परमेष्ठी का स्मरण करके काफिले को छोड़कर गुप्त रूप से अकेले ही नगर की ओर चल दी। काफिले के लोग अपने–अपने कामों में लगे हुए थे, इसलिए उन्हें दमयन्ती के जाने का पता ही नहीं लगा।

❖ ❖ ❖

सती का प्रताप

व्यक्ति का यह सहज स्वभाव है कि जब वह अपने निश्चय के अनुसार कार्य में प्रवृत्त हो जाता है, तब उसे अपने निश्चय के अनुरूप ही विचार आते रहते हैं। इसलिए दमयन्ती ने चलते–चलते सोचा कि सहारा क्या ढूंढना ? आत्मा अकेली आयी है और अकेली जायेगी। मेरे पास आत्मिक शक्ति है और वही मेरा सहारा है। जहाँ भी जाऊँगी, वहीं आनन्द ही आनन्द है। इन्हीं विचारों के साथ जैसे ही वह आगे बढ़ी, तो चारों और बहुत ही घनी झाड़ियों को देखकर विचार में पड़ गयी कि यह तो पहले से भी ज्यादा बियाबान जंगल आ गया है। मैं यहाँ रुकूं या आगे बढ़ूं? पहले तो निश्चय किया था कि मुझे अकेले ही अपने निश्चित स्थान पर पहुँचने के लिए चल देना चाहिए, परन्तु यहाँ आकर कर्तव्य–विमूढ़ बन गयी। एक मन तो कहता है कि इन झाड़ियों के पीछे कैसा क्या बन जाये, तो लौटकर मुखिया को समझाकर और किसी को साथ लेकर इन झाड़ियों को पार किया जाये। बड़ी दुविधा में फंस गयी हूँ कि अब क्या किया जाये? लेकिन ऐसी स्थिति से उबरने के लिए मेरे पास एक शक्ति है, जो परस्पर विरुद्ध विचार पैदा होने पर सही निर्णय देती है।

ऐसा विचार कर दमयन्ती एक वृक्ष के नीचे आकर आत्मचिन्तन में लीन होकर सोचने लगी–हे अन्तर्देवी! हे अन्तश्चेतना! मुझे इस समय क्या निर्णय लेना चाहिए ? सोचते–सोचते वह इस निर्णय पर पहुँची कि मेरे पास आत्मिक बल है। यह आत्मिक बल सब बलों में

सिरमौर होता है। अतः मुझे जरा भी भयभीत न होकर दृढ़तापूर्वक अपने मार्ग पर चल देना चाहिएँ

इस निर्णय के अनुसार दमयन्ती उस भयंकर वन को पार करके जैसे ही एक जगह आयी, तो उसने एक भयंकर दृश्य देखा कि कोई विकराल रूप उसके सामने खड़ा है। उसकी आँखों से अंगारे बरस रहे हैं। पहाड़ जैसा ऊँचा और मेघ के रंग जैसा उसका काला शरीर है। गले में नरमुंडों की माला पहने हुए है। कभी वह धूल उछालता है, कभी आग उगलता है, तो कभी अट्टहास करते हुए अपने बड़े–बड़े दांत दिखाता हुआ उसकी ओर चला आ रहा है।

इस दृश्य को देखकर दमयन्ती स्तब्ध रह गयी कि ऐसा रूप पहले तो कभी देखने में नहीं आया। क्या करूं? पीछे मुड़ती हूँ, तो यह मेरा पीछा नहीं छोड़ेगा और रोती–चिल्लाती हूँ, तो इसका साहस और बढ़ जायेगा। मनुष्य को ऐसे प्रसंगों पर धैर्य रखना चाहिएँ आत्मिक शक्ति जैसी इसके पास है, वैसी ही मेरे पास भी है। मुझे इससे भयभीत नहीं होना चाहिएँ मेरे आत्मबल की शक्ति अपार है, जिसे यह नष्ट नहीं कर सकता है। यदि शरीर पर ममत्व रखकर और उसका ही ध्यान रखकर डरते–डरते बात करूंगी, तो यह डराने की कोशिश करेगा। अगर यह शक्तिशाली भी है, तो ज्यादा–से–ज्यादा मेरे शरीर पर प्रहार कर सकता है और प्रहार करके उसके टुकड़े कर सकता है, किन्तु आत्मा का कुछ भी बिगाड़ना वाला नहीं है। इष्टदेव को नमस्कार करके वह साहस के साथ आगे बढ़ी।

दमयन्ती को देखते ही विकराल रूप बोला–तुम कौन हो और किधर से आ रही हो? अच्छा हुआ, जो तुम आ गयी। मैं कई दिनों से भूखा हूँ और अब तुम्हें खाकर अपनी भूख मिटाऊँगाँ

विकराल रूप की बात सुनकर दमयन्ती जरा भी भयभीत नहीं हुई और निर्भयतापूर्वक उसकी ओर देखकर बोली – भाई! तुम कौन हो? मुझे खाना चाहते हो, तो भले ही खा लो, किन्तु पहले अपने बारे

में बताओ कि तुम कौन हो और इस प्रकार का विकराल रूप बना कर मेरे सामने क्यों आये हो?

राक्षस–मेरे ऐसे सुन्दर रूप को तू विकराल रूप बता रही है? मनुष्य नहीं, देव हूँ और देवों में भंयकर देव हूँ। तू जिस किसी भी इष्टदेव का ध्यान करती है, उसे बुला ले। मैं डरने वाला नहीं हूँ। उसे भी ताक में रखकर मैं तेरा भक्षण करूंगा, तुझे खाये बिना नहीं छोडूंगा।

दमयन्ती–मेरे इष्टदेव अरिहन्त सिद्ध हैं, जिनमें राग–द्वेष, मद–मत्सर आदि विकारी भाव नहीं हैं और न कभी होने वाले हैं। मैंने शीलव्रत का कवच पहन रखा है और धैर्य रूपी ढाल मेरे पास है। इनको तू किसी भी हालत में मुझसे दूर नहीं कर सकता है। तू देव है, तो मैंने देवों का वर्णन सुना है और जानती हूँ कि देवों के लिए मनुष्य शरीर खाने योग्य नहीं है, उनके लिए भोज्य वस्तु नहीं है। तू मुझे व्यर्थ ही धमका रहा है। अगर तू मेरी आत्मा को इस शरीर से अलग ही करना चाहता है, तो मैं धर्म की आराधना के लिए, शीलव्रत की रक्षा के लिए अपने जीवन को इष्टदेव के लिए समर्पित कर सकती हूँ, परन्तु तू यह चाहे कि डरा–धमका कर मेरे धर्म को छुड़ा दे, तो यह कभी होने वाला नहीं है।

दमयन्ती के इन गम्भीर वचनों को सुनकर देव आश्चर्य–चकित हो गया कि यह कितनी साहसी है, जो निडर होकर मेरा मुकाबला कर रही है। वह अपने अवधिज्ञान से कुछ अनुमान–सा लगाते हुए सती के बारे में सोचने लगा, तो उसे अनुभव हुआ कि इस पृथ्वी–मण्डल पर सूर्य कभी किरणों–रहित नहीं हो सकता, परन्तु वह भी हो जाये, चांद अंगारे नहीं बरसाता, परन्तु वह भी बरसा दे, समुद्र मर्यादा नहीं छोड़ता, परन्तु वह भी छोड़ दे, लेकिन सती को अपने पद से कोई नहीं डिगा सकता। वह अपनी मर्यादा नहीं छोड़ती है। यह दिव्य पवित्र आत्मा है। इसके दर्शन कर मैं धन्य हो गया। तब

वह अपना रूप बदलकर आकाश में खड़े होकर बोला–धन्य है कि तू अपने धर्म में दृढ़ है। मैं बहुत खुश हूँ। मुझ में न कोई विकार–भावना है और न कोई दूसरी बात। मैं तो तेरी परीक्षा लेने आया था और तू अपनी परीक्षा में खरी उतरी है। जो मांगो, वही देने को तैयार हूँ। बताओ मैं तुम्हारी क्या सहायता करूं?

बन्धुओं! आज के भाई–बहिनों में दमयन्ती जैसी शक्ति आ जाये, तो ये कल्पित भूत–डाकिनी आदि नहीं डरा सकते। परन्तु आज वैसा धैर्य और साहस नहीं दिखता, जिससे वह डाकिन है, भूत है या नहीं इसको नहीं समझकर वहम के पीछे नाचते रहते हैं और धर्म के प्रति निष्ठा और आत्मिक श्रद्धा जिस मात्र में होनी चाहिए, वह नहीं दिख रही है। देव आदि किसी का कुछ नहीं बिगाड़ते हैं। वे किसी को डराते भी नहीं, किन्तु जिसका दिल कमजोर होता है, वह स्वयं डर जाता है और डर के मारे स्वयं अपने आपको कमजोर समझने लगता है। देव की ताकत नहीं कि वह निडर और धर्मी पुरुष पर आक्रमण करे। वह तो स्वयं ही धर्मी पुरुष के सामने नत–मस्तक हो जाता है।

देव के वचनों को सुनकर दमयन्ती उससे बोली–मुझे आपसे धन–दौलत नहीं चाहिएँ फिर भी आप कुछ करने में समर्थ हैं, तो बतायें कि मेरे पतिदेव, जो इस वन में मुझे अकेली छोड़कर चले गये थे, मुझे कब मिलेंगे?

दमयन्ती के इन दृढ़ता भरे वचनों को सुनकर देव ने अपने अवधिज्ञान से अनुमान लगाकर कहा–जिस दिन तुम्हारे पतिदेव तुम्हें छोड़कर गये हैं, उस दिन से ठीक बारह वर्ष बाद तुम्हारे पिता के घर पर ही वे तुमसे मिलेंगे। अभी जल्दी मिलने वाले नहीं हैं।

देव के मुख से बारह वर्ष बाद पतिदेव से मिलने की बात सुनकर दमयन्ती विचार में पड़ गयी और कुछ उत्सुकता के स्वर में देव से बोली – अरे भाई! क्या जल्दी मिलने की सम्भावना नहीं है?

देव – कर्मों का भोग तो करना ही पड़ेगा। जो निकाचित कर्म बंध गये हैं, वे तो समय पर ही पूरे होंगे। इसीलिए वे जल्दी से मिलने वाले नहीं हैं। चाहो, तो मैं तुम्हें पिता के घर पहुँचा सकता हूँ।

दमयन्ती ने सोचा कि अपने पुरुषार्थ और शक्ति पर भरोसा करना चाहिए, किसी के सहारे समय व्यतीत करना पुरुषार्थी के लिए अच्छा नहीं होता। वह देव से बोली – मैं स्व–पुरुषार्थ से अपने कर्तव्य को निभाती हुई पिता के पास पहुँच सकती हूँ। आप मेरे ६ ार्म–पिता हैं, आपकी कृपादृष्टि बनी रहे। इस मेहरबानी के लिए आपकी कृतज्ञ हूँ।

देव – मैं तुम्हारी कर्तव्य–निष्ठा देखकर प्रसन्न हूँ और जब भी मेरी जरूरत हो, तो याद करते ही सेवा के लिए तैयार हूँ। यह कह कर वह अन्तर्धान हो गया।

देव के अर्न्तधान हो जाने के बाद जैसे ही दमयन्ती ने चलने के लिए कदम बढ़ाये कि कुछ दूर चलने पर उसने सामने से आते हुए एक मुनिराज को देखा। उनको देखकर वह हर्ष–विभोर हो गयी कि ऐसे विकट जंगल में इन महापुरुषों के दर्शन हो जाना मेरे लिए मंगलमय है। ये मंगलरूप हैं और मंगलदाता हैं।

ऐसा सोचते–सोचते जब वह मुनिराज के निकट पहुँची, तो दर्शन करके निवेदन किया–भगवन् ! उपदेश तो सुनना चाहती हूँ, परन्तु स्थिति–मर्यादा के कारण यह भी जानती हूँ कि एकान्त स्थान में पुरुष की साक्षी के बिना अकेली स्त्री होने के कारण आप उपदेश देंगे नहीं। महिलाएँ कितनी भी संख्या में हों, परन्तु पुरुष की साक्षी होने पर ही मुनिराज उपदेश देते हैं। इस दृष्टि से मैं आपको उपदेश देने के लिए आग्रह नहीं करूंगी। हाँ, कुछ पुरुष यहाँ होते, तो अवश्य सुनने का लाभ मिल सकता था। मर्यादा भंग करके मैं उपदेश सुनाने का आग्रह नहीं कर सकती, किन्तु मंगलपाठ सुनाइएँ

मुनिराज मंगल–पाठ सुनाकर अपनी गति से गन्तव्य स्थान

की ओर चल दिये। इधर दमयन्ती भी मन में हर्षित होती हुई मुनिराज से सुने मंगल–पाठ को अपने जीवन का पाथेय मानकर अपने रास्ते पर चली। चलते–चलते जब दमयन्ती जंगल को पार कर किनारे पर आयी, तो पहाड़ियों के बीच एक भव्य गुफा को देखकर वह प्रसन्न हो गयी और सोचने लगी कि योगीजन एकान्तवास और साधना करने के लिए ऐसे ही स्थानों को ढूंढा करते हैं। ऐसे स्थानों पर रहकर ही परम शांति की प्राप्ति की जा सकती है। मैंने जंगल के बीच पति के साथ रहकर बहुत समय बिताया, लेकिन अकेले रहने का मौका नहीं मिला। योगीजन अकेले रहकर किस तरह साधना करते हैं, इसका अनुभव करने के लिए गुफा मिली है। मैं भी उन महात्माओं की तरह साधना करके जीवन में शांति प्रकट करूं। मन कैसे शांत रह सकता है, उसका अनुभव मुझे इस वायुमण्डल में रहने से ही होगा।

गुफा के निकट आकर दमयन्ती ने आस–पास, अन्दर बाहर चारों ओर देखा, तो अनुभव किया कि यहाँ का वातावरण सुन्दर है और मन की प्रसन्नता बढ़ाने वाला भी है। किन्तु स्त्री होने के कारण इस एकान्त स्थान में अधिक समय तक अकेला नहीं रहा जा सकता है, इसलिए अब मुझे यहाँ से चल देना चाहिए और चलने के लिए कदम उठाये, तो पैर नहीं बढ़े। इस स्थिति को देखकर दमयन्ती ने विचार किया कि कोई अदृश्य शक्ति मुझे रोक रही है। मैं इतनी दूर तक तो तेजी से चली आयी, लेकिन अब यहाँ से आगे चलने के लिए पैर क्यों नहीं उठ रहे हैं? क्या बात है? यदि आसपास कोई बस्ती हो, तो यहाँ अधिक समय तक भी रहा जा सकता है। फिर अपने विचार के अनुसार वह बस्ती का पता लगाने के लिए आसपास में घूमने लगी, तो कुछ दूर पर स्त्री–बच्चों आदि को देखकर वह वहाँ जा पहुँची। ऐसी भव्य रूपवती स्त्री को पहले–पहल अपने बीच देखकर बस्ती के लोग सोचने लगे कि यह सौम्य सुन्दर स्त्री कौन है? इस जंगल के बीच कोई देवी तो नहीं आ गयी ?

बस्तीवालों के चेहरों पर झलक रही जिज्ञासा को देखकर दमयन्ती ने कहा–आप लोग आश्चर्य न करें और न डरें ही। मैं आप लोगों सरीखी मनुष्य ही हूँ और मुझे भी आप अपनी बहिन समझें। यदि आप लोगों का सहयोग मिल जाये, तो मेरा यहाँ पास की गुफा में रहने का विचार है।

दमयन्ती को घेरकर खड़े हुए स्त्री–पुरुष–बच्चों आदि ने उसकी मीठी वाणी सुनकर हर्षित होते हुए कहा कि हम सब तरह से आपकी सेवा करने को तैयार हैं। उनके विचारों को सुनकर दमयन्ती आश्वस्त हो गयी और वहीं गुफा में रहने का निश्चय कर लिया।

बस्ती के लोग दिन भर काम करके जब शाम को अपने घरों को लौटते, तो भोजन आदि करने के बाद वे सब गुफा के पास एकत्रित हो जाते थे। दमयन्ती उन्हें जीवन–विकास के लिए शिक्षा देती और स्त्रियों को समझाती कि घर की सफाई रखते हुए, रसोई बनाते समय आवश्यक बातों पर ध्यान देते हुए विवेकपूर्ण काम करोगी, तो अपनी आत्मा को पवित्र बना सकती हो। जंगल से जो लकड़ी आदि लाती हो, उन्हें देखभाल कर जलाओगी, पानी को छानकर काम में लाओगी और घर में लगे जालों आदि की सफाई रखोगी, तो बहुत सी जीवहिंसा से बच सकती हो।

दमयन्ती की इन शिक्षाप्रद बातों को सुन–सुनकर महिलाओं में एक नये उत्साह का संचार हो गया। उनके बच्चे भी पहले की अपेक्षा साफ–सुथरे दिखने लगे और कभी–कभी आपस में होने वाली तू–तू मैं–मैं बन्द हो जाने से घरों में भी शांति रहने लगी।

इस प्रकार दमयन्ती शांति की साधना करने के साथ–साथ दूसरों के जीवन को भी विकासोन्मुखी बनाने के कार्यों को करती हुई समय व्यतीत करने लगी।

❖ ❖ ❖

चिन्ताग्रस्त व्यापारी-समूह

कुछ समय बाद जब व्यापारियों को मालूम हुआ कि वह पवित्र आत्मा अज्ञात रूप से बिना कुछ कहे–सुने चली गयी, तो वे सभी दुःखी हो गये और उन्होंने अपने मुखिया को खबर दी, तो वह भी खेद–खिन्न हो गया। अपने मन में अनेक प्रकार के संकल्प–विकल्पों को करता हुआ वह सोचने लगा कि जिसके द्वारा दो–तीन दिन में ही हमें बहुत कुछ जानने को मिला था, जिसकी वाणी सुनकर आनन्द की अनुभूति होने लगी थी और हमारे जीवन में शांति का संचार हुआ, वह आनन्द की केन्द्र–बिन्दु कहाँ गयी ? वह अपने साथियों से कुछ रोष–भरे दुःखी स्वर में बोला–जो अमूल्य निधि हमें प्राप्त हुई थी, उसका हम पूरा लाभ नहीं उठा पाये और जो शिक्षा लेनी चाहिए थी, वह भी नहीं ले पाये। आप लोगों ने कुछ ध्यान नहीं रखा। वह कब गयी ? दिन में गयी या रात में? उस देवी की तो हमें हर प्रकार से रक्षा करनी चाहिए थी। उसकी खोज करो। वह यहीं कहीं जंगल में होगी, कोई उपद्रव तो नहीं हो गया? किसी देव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस ने उसका अपहरण तो नहीं कर लिया? उसकी तलाश करो, उसे खोज निकालो। जंगल का कोना–कोना छान डालो।

मुखिया की बात सुनकर साथ में रहने वाले सेवक, सैनिक और दूसरे–दूसरे साथी वन में चारों और फैल गये, परन्तु जब पता नहीं लगा, तो वे सब हारे–थके से लौट आये और बोले–हम लोगों ने जंगल का कोना–कोना छान लिया है, परन्तु उसका कुछ भी पता नहीं मिल सका है।

मुखिया–तुम इस प्रकार से पता नहीं लगा पाओगे। अभी कुछ समय पहले हुई वर्षा से भीगी जमीन पर पैरों के निशान देखते जाओ कि वे किस तरफ गये हैं और जिधर पैरों के निशान हों, तो समझ लो कि वह उधर ही गयी है।

अपने स्वामी की आज्ञा के अनुसार उन्होंने पैरों के निशान खोज निकाले और जब उन्हें विश्वास हो गया कि इस ओर जो पद–चिह्न गये हैं, वे स्त्री के होने चाहिए, तो वापस आकर उंगली से दिशा का संकेत करते हुए बोले–इस दिशा में पैरों के चिह्न हैं। हमने काफी दूर तक जाकर पता लगाया, तो मालूम हुआ कि एक ही व्यक्ति के पदचिह्नों की पंक्ति चली गयी है।

पद–चिह्नों की बात सुनकर मुखिया उन सबको साथ लेकर उस दिशा में चल दिया। चलते–चलते वह सोच रहा था कि ऐसी पुण्यशाली महिला–रत्न के दर्शन कब होंगे। सती का मन बहुत ही सौम्य है। वह आध्यात्मिक निधान कहाँ मिलेगा ? मुझे तो उस देवी के दर्शन और उसकी अमृतमय कल्याणकारी वाणी से उपदेश ग्रहण करना है। उस देवी की सुरक्षा का हम लोगों ने ध्यान नहीं रखा। वह किसी संकट में तो नहीं पड़ गयी ? मुझे तब तक चैन नहीं पड़ेगी, जब तक उस सती के दर्शन नहीं हो पायेंगे।

पदचिह्नों को देखते–देखते सब लोग गुफा के किनारे तक आ पहँचे और जब आगे चिह्न दिखायी नहीं दिये, तो अनुमान लगाया कि वह देवी यहीं कहीं होनी चाहिएँ गुफा के आस–पास जब कोई दिखायी नहीं दिया, तो कुछ लोगों ने मजदूरों की बस्ती में जाकर पूछा–यहाँ कोई स्त्री आयी है?

मजदूर–हाँ! आयी है। वह तो जीवन का विकास करने वाली देवी है।

मुखिया–वह कहाँ है?

मजदूर–वह गुफा में बैठी ध्यान कर रही है। हम लोग भी वहीं

जाने वाले हैं। तुम भी हमारे साथ–साथ आ जाओ।

मजदूरों की बात सुनकर उनको यह विश्वास हो गया कि हमारी मेहनत सफल हो गयी है। हम पुनः सती के दर्शन कर सकेंगे। वे हर्ष–विभोर होते हुए मजदूरों के साथ वापिस गुफा में जहाँ सती ध्यानस्थ थी, वहाँ आये। सती के दर्शन करके सभी मुखिया के संकेत के अनुसार चुपचाप शांति से बैठ गये और ध्यान समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगे।

व्यापारियों का मुखिया दर्शन करके अपने आप में कुछ स्वस्थ और प्रसन्न होकर सोचने लगा कि चंद चांदी के टुकड़ों के लिए हमने सारा जीवन बिता दिया, नाशवान पदार्थों में उसे नष्ट कर दिया और दिन–रात उन्हीं को इकट्ठा करने की चिन्ता में डूबे रहते हैं कि हमारे पास ज्यादा से ज्यादा धन–सम्पत्ति हो। धन कमाने के लिए अपने जीवन को भी संकट में डाल कर देश–देश घूमते रहते हैं, फिर भी हमारी भूख नहीं मिटती। यदि चाहते, तो हम भी इस सती की तरह अपना जीवन बना सकते थे, लेकिन हमने तो उसे व्यर्थ ही गंवा दिया। इस महान आत्मा को धन्यवाद है, जो शांति का अनुभव कर रही है।

समूह के दूसरे व्यक्ति भी धीरे–धीरे गुफा के पास पहुँचे और शांति से बैठ गये तथा सती की शांत–मुद्रा से अपने जीवन में शांति के संस्कार लेने लगे। उन्हें अनुभव होने लगा कि हम लोग आध्यात्मिक सुख की पवित्र गोद में रमण कर रहे हैं।

अपनी ध्यान साधना से निवृत होकर दमयन्ती ने जैसे ही नेत्र खोले, तो वहाँ बैठे हुए सभी आत्मीयता से आप्लावित हो उठे। उनके चेहरों पर उल्लास की रेखा चमक उठी और जय–जयकार करते हुए सभी ने अपना हर्षोल्लास व्यक्त किया।

इसके बाद व्यापारियों के मुखिया ने नमस्कार करके निवेदन किया–हे पवित्र आत्मा! आपने हमारे बीच तीन दिन तक रह कर जो

शांति का संदेश दिया, उससे परम शांति प्राप्त करने की हमारी लालसा और भी तीव्र हो उठी है और हम चाहते हैं कि प्रतिक्षण आपसे शांति की वाणी सुनते रहें। इसी भावना को सफल बनाने के लिए हम लोग आपकी खोज के लिए इधर–उधर दौड़े और अब चरणचिह्नों के सहारे यहाँ आपकी सेवा में आ पहुँचे हैं।

इस समय भी यद्यपि हमें उपदेश सुनने की लालसा है, परन्तु उससे भी पहले यह जानने की अभिलाषा है कि हमारा कौन–सा अपराध, अविनय–असातना हुई, जिससे कि हमको छोड़कर आप अकेली चली आयीं और हमें कोई सूचना या संकेत तक नहीं दिया? इससे हम सबको अत्यधिक दुःख हुआ। आप हमारे अपराधों को क्षमा करें। यदि हमारे किसी साथी से या सभी से अपराध हो गया हो, तो मैं उन सबकी ओर से माफी मांगता हूँ। महापुरुषों की महानता इसी में है कि वे छोटे व्यक्तियों को क्षमा करके उन्हें सन्मार्ग का उपदेश देते हैं। आपकी शक्ति को कोई विरले ही पहचान सकते हैं। इसलिए मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप हमारे सब अपराधों को क्षमा करके पुनः अपने चरणों से हमारे समूह को पवित्र करें। आपके चरण हमारे बीच रहें और आप जहाँ जाना चाहें, हम आपको वहीं पहुँचाने को तैयार हैं।

मुखिया के भावना भरे हुए वचनों को सुनकर दमयन्ती बोली–आप जो कुछ भी कल्पनाएँ कर रहे हैं, वे सम्भवतः आपके विचार से ठीक हो सकती हैं, किन्तु आप यह निश्चित मानिए कि किसी ने मेरा अपमान नहीं किया है। मैं स्वयं अपने विचार से आप लोगों का साथ छोड़कर चली आयी हूँ। मैंने देखा कि बरसात के कारण आप लोगों का आगे बढ़ना रुक गया है और आपका रुकना भी योग्य था, किन्तु मैं अपने उद्देश्य को ध्यान में रखकर पिता के घर जल्दी से जल्दी पहुँचने के लिए अकेली ही निकल पड़ी।

जब मैं आपके पास से अकेली निकली और कुछ दूर आगे

जाकर घनी झाड़ियों के पास आयी, तो मुझे एक विकराल दृश्य दिखायी दिया, किन्तु मैं घबरायी नहीं, तब उस विकराल रूप ने अपने सही देवरुप में आकर मुझे पतिदेव से मिलने सम्बन्धी बात बतायी।

मुखिया ने देववाणी को जानने की उत्सुकता दिखलायी, तो दमयन्ती ने आगे कहा–देव ने बताया कि अभी बारह वर्ष तक पतिदेव के दर्शन नहीं होंगे। तब मैंने सोचा कि कर्मों का फलभोग ऐसा ही है, तो फिर पिता के घर पहुँचने की जल्दी क्यों करूं और तेजी से बढ़ने के बजाय धीरे–धीरे चलते हुए सोचने लगी कि मैंने फिजूल ही जल्दी कर दी। यदि वहीं समूह में रहती, तो ठीक रहता। फिर चलते–चलते जब मैंने इस गुफा को देखा, तो विचार हुआ कि बड़े–बड़े योगी गुफाओं में बैठकर साधना करते हैं, तो मैं भी इस गुफा में बैठ कर साधना क्यों न करूं? लेकिन फिर सोचा कि मैं स्त्री हूँ और गुफा में अकेली रहकर ध्यान नहीं कर सकती, अतः आसपास में बस्ती की खोज में आगे चली, तो यहीं पास में रहने वाले इन भाई–बहिनों का सहयोग मिला। आप लोगों की तरह ये भी कुटुंबीजन बन गये हैं और अब इनके बीच रहकर अपनी साधना कर रही हूँ।

इस प्रकार से अपना वृतांत सुनाने के बाद उपस्थित भाई–बहिनों को उद्बोधन देते हुए दमयन्ती आगे बोली–

मैं कहाँ रहूँ और कहाँ न रहूँ, इसकी चिन्ता छोड़िए और अपने बारे में विचार कीजिए कि इस मनुष्य तन को पाकर जो साधना करनी चाहिए थी, उसको तो हम भूल रहे हैं और इन भौतिक साधनों में उलझे हुए हैं। हम मनुष्य जीवन को बेकार कर रहे हैं। यदि आपको शांति का मार्ग पाना है, तो वह आँतरिक अहिंसा–देवी से मिल सकता है। ***vfgalk ijeks /keZ%^** यह ध्वनि किसी व्यक्ति, जाति या दल की नहीं, किन्तु विशुद्ध आत्मा की आवाज है। अहिंसा को परम धर्म मानना सिर्फ मानव जाति के लिए ही नहीं, वरन् प्राणीमात्र के लिए हितकर है। शांति का दरवाजा खोलने के लिए मनुष्य अनेक

उपाय करते हैं, लेकिन विश्व में शांति के लिए किये जाने वाले इन प्रयत्नों का परिणाम आपके सामने है। उनसे शांति मिलती है या अशांति? व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को शांति चाहिए, तो इन सब के लिए एक ही द्वार है और वह है अहिंसा का द्वार।

अहिंसा वीरों का धर्म है, आत्मवीरों का धर्म है और इसको अपनाये बिना समाज, व्यक्ति और राष्ट्र में शांति नहीं हो सकती।

इस तरह सामान्य रूप से सभी को सम्बोधित करते हुए दमयन्ती ने पुनः विशेष रूप से स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए कहा–आप लोग अपने स्वरूप को क्यों भूली हुई हैं? मोह का बंधन तोड़कर अहिंसा का प्रचार और प्रसार करना चाहें, तो आप अधिक कर सकती हैं। माताओं में वात्सल्य भावना का झरना बहता रहता है। वे संतान पर कैसी वत्सलता रखती हैं, यह सभी जानते हैं और आपके उस मातृत्व में अहिंसा देवी का निवास है। परन्तु मोह का बंधन उस अहिंसा भावना का अवरोध कर देता है और वह संकुचित भावना अहिंसा को मोह–रूप में परिणत कर देती है।

अहिंसा का पालन मनुष्य जाति की स्त्रियाँ ही नहीं, किन्तु जगत् की सभी योनियों में रहने वाली स्त्रियाँ करती हैं। हाँ, यह बात जरूर है कि वे अहिंसा का मलिन पालन करती हैं। आपने बिल्ली को देखा होगा कि वह चूहे को देखते ही झपटती है, लेकिन उसके मन में भी अहिंसा का निवास रहा हुआ है। आप यदि उसकी वृत्ति को देखेंगी, तो पता लग जायेगा कि जब वह संतान को जन्म देती है, तो रक्षा के लिए उसे दांतों में दबाकर घर–घर फिरती है, लेकिन क्या मजाल कि बच्चे को दांत लग जायें या किसी प्रकार से कष्ट पहुँचे। इतनी करुण भावना अपनी संतान के प्रति उसमें रही हुई है, लेकिन चूहे को देखते ही वह हिंसक बन जाती है। यह सब उसकी मोह भावना है, जिससे उसकी आँतिरिक चेतना को आच्छादित कर रखा है।

हम अपनी बहिनों में भी प्रायः ऐसी ही भावना देखते हैं कि वे अपनी संतान के प्रति जो वात्सल्यभाव रखती हैं, उसके लिए सब तरह के कष्ट बर्दाश्त कर लेंगी। यदि जाड़े की मौसम में बच्चे ने बिछौने में पेशाब कर दिया, तो गीले कपड़े में स्वयं सो जायेंगी और बच्चे को सूखे में सुलायेंगी। इसी प्रकार अन्य दूसरे मौकों पर भी अपने आपको कष्ट में रखकर भी बच्चे की हर तरह से रक्षा करेंगी। वात्सल्य–भावना के कारण ही वे सब कष्टों को सह लेती हैं, परन्तु मोहवशात् उनमें भी अहिंसा का जैसा चाहिए, वैसा रूप प्रगट नहीं हो पाता है। यदि वे समझने लग जायें कि जैसी मेरी संतान है, वैसी ही दूसरों की संतानें हैं और पड़ौसी की संतान के साथ भी हमदर्दी रखने लग जायें, तो विश्व में भी अहिंसा का स्वप्न साकार हो सकता है और इस प्रकार उनकी मातृ–भावना विशेष रूप से प्रस्फुटित होकर अहिंसा रूप ले लेगी।

पुरुषों मे भी वात्सल्य–भावना तो है, लेकिन वह टूट जाती है, जबकि स्त्रियों में वह अखंड रूप में रहती है। वे अहिंसा का पालन ज्यादा अच्छे रूप में कर सकती हैं और जब कर सकती हैं, तो विश्वशांति का अमोघ उपाय आपके पास में है, जिसके द्वारा समाज व राष्ट्र में शांति का संचार हो सकता है। आपका सुधार होगा। आप मोह की दशा से ऊपर उठकर परिवार, समाज और राष्ट्र के जीवन में अपने वात्सल्य का अमृत घोल दें, तो अहिंसा अमर हो जायेगी। आप लोगों से विशेष और क्या कहूँ?

दमयन्ती की इस मार्मिक वाणी को सुनकर सभी उपस्थित भाई–बहिन गद्‌गद् हो गये कि स्वयं तो दुःखी है, पति के बिछुड़ जाने से वन–वन भटक रही है, लेकिन उस दुःख को भूल कर शांति का अनुभव करते हुए हमें भी शांति का मार्ग बता रही है। ऐसी पवित्र आत्मा को धन्य है।

बंधुओं ! लोग दुःख से दूर भागते हैं, घबराते हैं और दुःख आ

पड़ने पर दीनता धारण करते हैं, सोचते हैं कि दुःख मनुष्य के लिए घातक है। परन्तु ज्ञानी जन कहते हैं कि दुःख जीवन–शक्ति बढ़ाने में जितना उपयोगी होता है, उतनी दूसरी कोई भी वस्तु नहीं। दुःख घातक नहीं है, किन्तु ज्ञान की खान है। यह सती, जो शांति का उपदेश दे रही है, श्रोताओं में शुद्ध सात्विक भावना जगा रही है, तो उसका कारण देखें। उसका कारण दुःख की अवस्था और वन में भटकना है। यदि वह अकेली जंगल में नहीं रहती और पति साथ में होते, तो क्या यह आत्मजागृति आ सकती थी?

❖ ❖ ❖

तापसों को प्रतिबोध

आसपास में रहने वाले मजदूर, किसान और वे व्यापारी अपने मुखिया के साथ गुफा में बैठे–बैठे तन्मय होकर दमयन्ती की आध्यात्मिक वाणी का श्रवण कर रहे थे। अन्तर् में लीन रहने के कारण उन्हें यह भी भान नहीं रहा कि आस–पास में क्या हो रहा है?

देखते–देखते भयंकर आँधी–तूफान के साथ मूसलाधार वर्षा होनी लगी। जिधर भी नजर जाती? तो ऐसा मालूम पड़ता था कि प्रलयकाल के मेघ ही बरस रहे हैं। इस मूसलाधार वर्षा से जमीन पर इतना पानी हो गया कि जंगल का सम्पूर्ण क्षेत्र समुद्र जैसा दिखने लगा। नदी–नालों के पूर में बड़े–बड़े वृक्ष उखड़ कर बहने लगे। इस दृश्य को देखकर मजदूरों को चिन्ता हो रही थी कि हमारी झोंपडियों का क्या हो रहा होगा, हम तो तबाह हो जायेंगे और व्यापारी सोच रहे थे कि हम सब तो इधर आ गये और उधर हमारे सामान की क्या हालत हो रही होगी !

इतने में ही जोर–जोर से मनुष्यों के रोने–चिल्लाने की हृदय–वेधक आवाजें सुनायी दीं, जिनको सुनकर सभी सोचने लगे कि यह रोने–चिल्लाने की आवाजें किसकी हैं? कहाँ से आ रही हैं? कौन रो रहा है यह? दमयन्ती ने मजदूरों की ओर देखकर पूछा–क्या ये रोने की आवाजें झोंपड़ियों से आ रही हैं? कोई वहाँ रह तो नहीं गया?

मजदूर–नहीं, हमारे बाल–बच्चे आदि सभी यहीं पर हैं।

दमयन्ती–तो फिर यह रोने की आवाजें किसकी हैं?

मजदूर–हमारे पास कुछ दूरी पर साधु लोग कुटिया बना कर रहते हैं। उनके बाल–बच्चे नहीं है, सिर्फ पुरुष ही पुरुष हैं। फलफूल खाते हैं और दिन–रात तपते रहते हैं। हो न हो, शायद वे ही चिल्ला रहे हों।

मजदूर की बात सुनकर दमयन्ती ने सोचा कि वे भी हमारे जैसे मनुष्य हैं और उनकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। अतः वह गुफा के बाहर आने के लिए उठी, तो सभी बोले–आप यहीं ठहरिएँ हम में से कुछ लोग वहाँ जाकर उन्हें यहाँ सुरक्षित ले आते हैं।

दमयन्ती–मैं बारिश में नहीं जा रही हूँ, किन्तु देखना चाहती हूँ कि असमय में यह मूसलाधार वर्षा क्यों हो रही है?

दमयन्ती ने बाहर आकाश में दृष्टि डाली, तो अनुमान लगाया कि जो यह मूसलाधार पानी बरस रहा है, इसमें देव का हाथ होना चाहिए और कुछ चिन्तन करके गम्भीर स्वर में बोली–मैंने आज तक पतिव्रत धर्म का पालन किया है, शीलव्रत में मलिनता नहीं आने दी है। अतः मैं देवेन्द्र और मेघमाली देव को सम्बोधित करती हूँ कि आप यह मूसलाधार बरसात बन्द कर दें, ताकि सभी प्राणी शांति का अनुभव कर सकें।

सती के वचनों का जादू–सा असर हुआ कि जो मूसलाधार बारिश हो रही थी और जिससे चारों ओर पानी ही पानी हो गया था, वह एकदम बिखर गयी। इस अपूर्व चमत्कार को देखकर गुफा में बैठे सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये कि यकायक यह बारिश बन्द कैसे हो गयी और उधर अपने आपको तापस या साधक मानने वाले व्यक्ति भी सोचने लगे कि यह आवाज करने वाला कौन है, जिसकी आवाज से इतने जोर से होने वाली वर्षा एकदम बन्द हो गयी ? इसका रहस्य जानने के लिए वे सबके–सब गुफा के निकट आये।

बन्धुओं ! इन्सान सोचता है कि क्या आवाज से बारिश बन्द

हो जाना सम्भव है? सम्भव और असम्भव कुछ भी नहीं है। इस संसार का रहस्य जिसने जान लिया है और विधि–विधान को भलीभांति समझ लिया है, वह इस सृष्टि के बीच अपनी शक्ति के प्रयोग से क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता, यह तर्क का विषय नहीं, किन्तु श्रद्धा का विषय है। आप जानते हैं कि आज का युग वैज्ञानिक युग कहलाता है। आपके पास स्थूल दृष्टि है और वैज्ञानिक सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं। आपके और मेरे बीच में आपको कुछ नहीं दिखता है, परन्तु यहाँ सब कुछ है, यहाँ जो कुछ है, वह सारा संसार है। यह आँखों से दिखने वाला नहीं है, किन्तु अनुमान से जाना जा सकता है। इसके लिए एक मोटा उदाहरण दूं कि आप टेलीविजन के बारे में सुनते हैं कि यदि कोई व्यक्ति अमेरिका में बोल रहा है, तो बोलने के साथ–साथ उसका फोटो भी दिखता है। उसके होंठ हिलते दिखते हैं, हाथ–पैर आदि शरीर के अंग वह जिस रीति से हिलाता है, उसी ढंग से हिलते दिखते हैं। तो यह क्या है? यह तो वह पदार्थ है, जो पहले दृष्टिगत नहीं हो रहा था, किन्तु अब यंत्र की सहायता से दिख रहा है। यह सब भौतिक ज्ञान की उपलब्धि है।

जब आप इस उपलब्धि को शास्त्र के गहन चिन्तन के साथ जोड़ें, तो ज्ञात होगा कि हमारे अन्दर एक ऐसा तत्त्व रहा हुआ है, जिसे हमारी आँखें नहीं देख सकतीं। फिर भी यहाँ कोई तर्क करे कि यह कुछ भी नहीं है, खाली आकाश है, तो उनको कैसे समझाया जाये? यदि उनका तर्क मान भी लिया जाये कि कुछ भी नहीं है, तो अमेरिका में बोलने वाले के शब्द कैसे सुनायी दिये, उसकी सूरत कैसे दिखी? आप कहेंगे की यन्त्र के माध्यम से यह सब हुआ, तो बीच में ऐसा कौन सा बेतार का तार है, सूक्ष्म शक्ति है, जिससे उसे ग्रहण किया जा रहा है। यह बात हवाई नहीं है। आज के वैज्ञानिक युग में जो बातें पुनः पुनः आ रही हैं, उनको अन्तर् की ओर जोड़ने की कोशिश करेंगे, तो शास्त्र का रहस्य छिपा नहीं रह सकता है।

बारिश बन्द हो जाने पर तापसों ने गुफा के निकट आकर

जब दमयन्ती के दर्शन किये, तो विचार में पड़ गये कि यह मानव है या देवांगना है? शायद देवांगना ही कोई रूप बनाकर आयी है या कोई शक्ति है? कहीं हम भ्रमित तो नहीं हो रहे हैं? और ऐसी ही दूसरी तरह–तरह की कल्पनाएँ करते हुए वे सती का मुखारविन्द देख–देखकर समाधान पाने की कोशिश करने लगे।

दमयन्ती ने आने वालों की स्थिति और उनके चेहरों पर झलक रही जिज्ञासा को देखकर सांत्वना देते हुए कहा–घबराओ नहीं। यह मनुष्य तन रोने के लिए नहीं, किन्तु साधना के लिए मिला है। धैर्य रखो, सब अच्छा होगा। आप लोग शांति रखो और शांति को जीवन का अंग समझो। दुःख करने से दुःख और बढ़ता है, इसलिए धैर्य धारण करो।

दमयन्ती के इन आत्मीयता से परिपूर्ण सांत्वना भरे वचनों को सुनकर वे तापस गद्गद् होकर सोचने लगे कि हमारी जिन्दगी के क्षण तो यों ही जा रहे हैं। वे बोले–आपकी वाणी पवित्र है, आपका स्वरूप पवित्र है। आप देवी हैं, जगदम्बा हैं। आप कुछ भी समझें, परन्तु हमारे लिए तो आप ही सब कुछ हैं। हम चाहते हैं कि आपकी तरह हम भी शांति का अनुभव करें। आप बतायें कि हमारे जीवन में शांति का संचार कैसे हो? इसका विधि–विधान हमें बतायें। आपकी साधना में ऐसी कौनसी शक्ति है, जिसके परिणामस्वरूप आपकी आवाज को सुनते ही बादलों का तूफान हट गया, मूसलाधार वर्षा बन्द हो गयी ? इस तरह का कार्य आज तक हमारी नजर में नहीं आया। आप हमारी श्रद्धेय हैं, अतः अब आप हमें वह मन्त्र बताईए कि जिसका आचरण करके हम अपने जीवन का विकास कर सकें।

तापसों की आँतरिक भावना को सुनकर दमयन्ती ने सोचा कि ये सब मेरे आत्मबंधु हैं। ये लोग आध्यात्मिक शक्ति के विकास के उपायों को जानने के लिए उत्सुक हो रहे हैं। अतः प्रार्थना के अनुरूप उनकी जिज्ञासा को शांत करने के लिए बोली–आप मेरे

आत्मीय हैं। आप भी मेरी आत्मा के तुल्य ही हैं। आप यदि कष्ट पाते हैं, अशांति का अनुभव करते हैं, तो मैं भी अपने अंदर अशांति का अनुभव करती हूँ। यह कल्पना नहीं है, लेकिन महापुरुषों का अनुभव है कि अंतःकरण से रागद्वेष को नष्ट करके परम शांति का स्वरुप पाया जा सकता है। उन्हीं का अनुभव, उद्घोष, उपाय उभयविधि से आपको समझाती हूँ। आपको कल्याणप्रद मनुष्य जीवन मिला है, आप थोड़ा–सा विवेक लगाकर इसको ग्रहण करेंगे, तो शांति के चरण आपसे दूर नहीं रहेंगे।

दमयन्ती के मुख से उभयविधि शब्द को सुनकर व्यापारियों के मुखिया ने अपनी जिज्ञासा प्रगट करते हुए कहा–भगवती ! यह उभयविधि क्या है?

दमयन्ती–शांति करने वाले कार्यों को करना विधिमार्ग है और अशांति के कारणों को दूर हटाना निषेधमार्ग है। ये दोनों मिलकर उभयमार्ग–उभयविधि कहलाते हैं। जिन कार्यों से शांति मिले, उसको करना चाहिए और अशांति बढ़ाने वाले कार्यों को नहीं करना चाहिएँ इसी के द्वारा आप वीतराग के मार्ग को समझ सकेंगे।

उभयविधि के बारे में किये गये स्पष्टीकरण को जब साधारण जन नहीं समझ पाये, तो उनमें से एक ने कहा–हम लोग आपकी बात पूरी तरह नहीं समझ पाये हैं। इसलिए उभयविधि का क्या अर्थ है, आप विशेष रूप से समझाइएँ

दमयन्ती ने श्रोताओं की जिज्ञासा को समझ कर उभयविधि के अर्थ को विशेष रूप से समझाते हुए कहा–आपके पास आत्मा रूपी अमूल्य निधि है। यदि उसे पाना है, तो कुव्यसनों का त्याग करें। कुव्यसनों में पड़कर आप अपनी शक्ति का नाश कर रहे हैं। आप लोग दिन–रात मेहनत–मजदूरी करके पैसा कमाते हैं और उसे शराब व मांस आदि कुव्यसनों में उड़ा देते हैं, जिससे आप व्यावहारिक दृष्टि से शांति का अनुभव नहीं कर पाते, तो फिर आत्मिक दृष्टि से

शांति प्राप्त करना और भी दूर की बात है। यदि आप लोग शराब को बनते देखेंगे, तो उसमें असंख्य प्राणियों की हत्या होती है और मांस खाना तो अपने जैसे पंचेन्द्रिय जीवों का प्राणाघात है। अतः कुव्यसनों का त्याग करना निषेधमार्ग है। जैसे मैं शांति का अनुभव करना चाहता हूँ, वैसे ही दूसरे भी करना चाहते हैं और उनको भी शांति पहुँचानी है, यह विधिमार्ग है। आप विवेकशील बनकर सम्यक्दृष्टि पूर्वक अपने जीवन को मांजें और मन में शुभ भावनाएँ लायें तथा हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह रूप जो निषेध का मार्ग है, उसका त्याग करें। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करना विधिमार्ग है।

यह विधि और निषेध–रूप प्रवृत्ति एक साथ चलती है। हिंसा का त्याग करना और किसी को कष्ट नहीं देना – यह निषेधमार्ग है और अपने प्रयत्नों, कार्यों से जीव को शांति देना विधिमार्ग हैं। झूठ नहीं बोलना निषेधमार्ग है और इसके विपरीत सत्य बोलना विधिमार्ग है। इसी तरह चोरी न करना निषेधमार्ग है और अस्तेयव्रत धारण करना विधिमार्ग है। अब्रह्मचर्य का सेवन नहीं करना निषेधमार्ग कहलाता है और ब्रह्मचर्य का पालन करना विधिमार्ग है। वस्तु में मूर्च्छा–बुद्धि का त्याग करना निषेध मार्ग है और अमूर्च्छाभाव से कुछ ग्रहण करना पड़े, तो ले लेना विधिमार्ग है। इस समतादर्शन के साथ जीवन को समझने की कोशिश करें। यह आपके जीवन के लिए कल्याण का मार्ग है।

दमयन्ती की इस माार्मिक वाणी को सुनकर सबको खुशी हुई और उन्होंने उभयविधि के अर्थ को स्पष्ट रूप से समझ लिया। इसके बाद सबने एक स्वर से कहा–आपने आज जो उपदेश दिया, यही उपदेश हमको रोजाना मिलता रहे, तभी हम अपने जीवन में उसे साकार रूप देने में सफल हो सकते हैं। एक दिन के उपदेश से न तो हमें पूरा संतोष हो सकता है और न हम उसे एकदम जीवन में उतार सकते हैं। कोई ऐसा साधन जुट जाये कि जिससे हम

निश्चिंत–से होकर अपने जीवन को कल्याण–मार्ग पर अग्रसर कर सकें, तो उत्तम हो।

मजदूरों आदि की बात सुनकर दमयन्ती सोचने लगी कि मैं इनकी भावना के अनुरूप अभी क्या साधन जुटा सकती हूँ। इस समय तो मेरे पास कुछ भी नहीं है। राजरानी होती और सत्ता में भी हिस्सा होता, तो मैं इनके लिए कुछ साधन जुटा देती।

दमयन्ती के चेहरे के भावों का अनुमान लगाते हुए मुखिया ने सोचा कि मैं धनार्जन में दिन–रात लगा रहता हूँ, किन्तु एक दिन इसे छोड़कर जाना ही होगा। अतएव शांति के प्रचार–प्रसार के लिए मेरे धन का कुछ सदुपयोग हो जाए, तो उत्तम है। वह खड़ा होकर बोला–बहिन ! आपके चेहरे के भावों को देखकर मुझे कुछ ऐसा अनुमान लग रहा है कि शायद आप यह सोच रही हैं कि मेरे पास कुछ नहीं है, अतः इनके लिए साधन कहाँ से जुटाऊँ? आप इसका विचार न कीजिएँ आपके पास सब कुछ है। आपके पास जो शांति का भंडार है, वह सर्वत्र नहीं मिल सकता। यह नाशवान सम्पत्ति आती है और चली जाती है। मैं अपनी कमाई का सदुपयोग करना चाहता हूँ।

मुखिया के भावों को सुनकर दमयन्ती बोली–आपकी भावना अच्छी है और आपका सोचना ठीक है। मनुष्य चाहे कितनी ही सम्पत्ति कमाये, लेकिन अंत में वह उसे छोड़कर चला जाता है। यदि इस सम्पत्ति को वह सदुपयोग में लगा देता है, तो अपने जीवन को और दूसरों के जीवन को भी लाभ पहुँचाता है। इसलिए कष्ट उठाने वाले इन भाइयों के दुःख को दूर करने के लिए यदि आप अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करना चाहें, तो आप दुर्व्यसनों को छुड़ाने में सहयोगी बनें।

दमयन्ती के इन उपदेश भरे वचनों को सुनकर व्यापारियों के मुखिया ने तापसों और इन बस्ती के भाइयों के लिए एक साधना

योग्य स्थान की व्यवस्था कर दी और दमयन्ती ने वहीं उपदेश देना चालू कर दिया, जिससे पहले जो अज्ञान तप कर रहे थे, उनमें से कइयों ने तो प्रायश्चित करके श्रमण–धर्म अंगीकार कर लिया और कई लोग कुव्यसनों को छोड़कर श्रावक धर्म का पालन करने लगे। उसी समय से इस नये स्थान का नाम तापसपुर पड़ा। इसमें इधर –उधर से आकर हजारों लोग बस गये और सब तरह की समृद्धियों से सम्पन्न होने पर तापसपुर नगर कहा जाने लगा।

❖ ❖ ❖

देव द्वारा नमस्कार

दमयन्ती के उन आत्म–विकासकारी उपदेशों द्वारा वहाँ के निवासियों के मन में शांति का साम्राज्य स्थापित हो जाने से उल्लास और उत्साह के दर्शन होते थे।

एक दिन की बात है कि रात में दमयन्ती आत्मसाधना में बैठने के पूर्व समय का अनुमान लगाने के लिए गुफा से बाहर आयी, तो बाहर आकर जब उसने आकाश की ओर नजर डाली, तो गुफा से थोड़ी दूर एक पहाड़ी पर आँखों को आकर्षित करने वाला बहुत ही मनमोहक प्रकाश देखा। उसे देखकर उसने सोचा कि पहाड़ी पर यह प्रकाश कैसे हो रहा है? प्रकाश किस चीज का है? यह तो बड़ा ही विस्मयकारी है। आसपास में रहने वाले अन्य लोगों ने भी उस प्रकाश को देखा, तो वे भी आश्चर्य में पड़ गये कि पहाड़ी पर प्रकाश होने के साथ–साथ यह कोलाहल कैसे हो रहा है? कोलाहल में हर्ष भरा हुआ है। जिसने भी उस प्रकाश को देखा, तो उसने दूसरे–दूसरे साथियों को जगाया और आपस में बातें करने लगे कि यह प्रकाश कैसे हो रहा है? लेकिन उन लोगों को जब कारण समझ में नहीं आया, तो कारण जानने के लिए वे सब गुफा के निकट आये। दमयन्ती भी आश्चर्य में थी। उसने भी अपने पास में खड़ी स्त्रियों से कहा–यह क्या बात है? इसमें कुछ न कुछ रहस्य है। इसलिए इसको देखना चाहिएँ फिर रहस्य को जानने के लिए वे सबके सब उस पहाड़ी की ओर चल दिये।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि एक मुनिराज ध्यानमग्न होकर प्रसन्न मुद्रा में विराजमान हैं और यह प्रकाश उनके मुखमंडल की प्रभा का है।

इस दृश्य को देखकर दमयन्ती ने कहा–इन मुनिराज का भी अपनी तरह ही माता की कुक्षि से जन्म हुआ, ये माता की गोद में खेले, पले, बड़े हुए और संयम साधना से घनघातिक कर्मों के आवरण का क्षय करके इन्होंने अब केवलज्ञान रूपी आलोक को प्राप्त कर लिया है, शांति की चरम सीमा के दर्शन कर लिए हैं। केवलज्ञान से बढ़कर और कोई ज्ञान नहीं होता। यह ज्ञान की चरम स्थिति है, जो चारित्र की पूर्णता होने पर कषायों का सर्वथा क्षय हो जाने से प्राप्त होती है और इनको केवलज्ञान प्राप्त होने से देवगण ज्ञानमहोत्सव मनाने के लिए जय–जयकार करते हुए आ रहे हैं।

शांत मुद्रा में विराजमान उन केवली भगवान ने जीवों के कल्याण के लिए अपनी अंतर् की अनुभूतियों को वाणी द्वारा व्यक्त करते हुए कहा–

यह मनुष्यतन, उत्तम कुल बहुत पुण्य से मिलता है। इसको पाकर व्यर्थ में नहीं गंवाओ। इसके मूल्य को समझो और जो लक्ष्य सिद्ध करना है, वह कर लो। मनुष्य–जीवन शांति प्राप्त करने का केन्द्र है। इस मनुष्य–तन के अतिरिक्त ऐसा दूसरा कोई तन नहीं है, जिसमें शांति का सार निकाला जा सके। न देवयोनि में, न नरकयोनि में और न तिर्यंचजीवन में यह क्षमता है। चौरासी लाख योनियों में भटकते हुए जीव के लिए कोई विश्राम–स्थल है, तो यही मनुष्यभव है और वीतरागवाणी के श्रवण का संयोग तो आर्यक्षेत्र में जन्म लेने वाले मनुष्य को मिलता है।

यह मनुष्य–तन और आर्यक्षेत्र प्राप्त करके भी यदि कोई इसका सदुपयोग नहीं करेगा, तो उससे बढ़कर दरिद्री और कौन होगा, आत्मा का पतन करने वाला और कौन होगा? यथास्वरूप की

प्राप्ति के साधनभूत तन को पाकर भी अगर नर उसका सदुपयोग नहीं करता है, तो वह कुछ भी नहीं कर सकता। इसके चले जाने के बाद लाख–लाख उपाय करें, तो भी कुछ नहीं मिल सकता। मनुष्य का चोला मिला और उसमें इन्द्रिय–जन्य भौतिक सुख का अनुभव करना वास्तविक जीवन की स्थिति नहीं है। परपदार्थों के संयोग से जो कुछ भी शांति का अनुभव होता है, वह क्षणिक होता है, लेकिन आत्मा के विज्ञान के साथ जो सुख मिलता है, वह अलौकिक होता है।

हे भव्य आत्माओं ! इस संसार में जीवन, यौवन और लक्ष्मी ये तीनों चीजें बड़ी ही चंचल हैं। ये सदा एक सी नहीं रहतीं। इसलिए हे मोह से ग्रस्त प्राणियों ! तुम इस उत्तम मनुष्य–जन्म को प्राप्त करके भी व्यर्थ क्यों गंवा रहे हो? इस मनुष्य–भव रूपी कल्पवृक्ष का फल तो मुक्ति है। उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करो। सांसारिक सुख की मृगतृष्णा का परित्याग कर देना श्रेयस्कर है।

भव्य आत्माएँ बड़ी शांति से उपदेश को श्रवण करते हुए अंतर् में उतार रही थीं कि इतने में ही प्रवचन–सभा के बीच किसी प्रकार का कोलाहल या आवाज किये बिना अचानक एक देव आकाश से उतरा और केवलज्ञानी भगवान की वंदना न करके सबसे पहले दमयन्ती के निकट आकर उसे नमस्कार किया और फिर उसके बाद केवली भगवान के सामने नतमस्तक हुआ।

इस दृश्य को देखकर श्रोताओं के मन में जिज्ञासा पैदा हुई कि केवली भगवान के रहते इसने सती को नमस्कार करने के बाद केवली की वंदना क्यों की? उपदेश समाप्त होने के बाद श्रोताओं ने केवली भगवान से अपनी जिज्ञासा का निवेदन करते हुए कहा–भगवन्! आपके उपदेश के बीच यह प्रसंग कैसे बना कि देव ने आकर पहले सती को नमस्कार किया और बाद में आपको? क्या कभी ऐसा होता है कि केवलज्ञानी के रहते सामान्य ज्ञानी को कोई पहले वंदना–नमस्कार

करे? आप अपने ज्ञान में सब कुछ जानते हैं कि यह देव कौन है और पहले सती को नमस्कार करने का कारण क्या है?

श्रोताओं की जिज्ञासा को सुनकर केवली भगवान बोले–यद्यपि देव ने सती को पहले नमस्कार क्यों किया, यह सब वृत्तान्त मैं जान रहा हूँ, परन्तु अभी मुझ से सुनने की बजाय आप इस देव से ही पूछ लें कि पहले सती को नमस्कार करने का क्या कारण है?

केवली भगवान के अभिप्राय को समझकर एक व्यक्ति ने देव को सम्बोधित करते हुए कहा कि आपने पहले सती को नमस्कार क्यों किया?

जन–समुदाय की जिज्ञासा का समाधान करने के लिए देव ने अपना पूर्व–वृत्तान्त बताते हुए कहा–पूर्वभव में मैं भी आप जैसा मनुष्य था और इसी वन में रहकर साधना कर रहा था। किन्तु सद्‌गुरु का सुयोग न मिलने से बालतप करते हुए शरीर को कष्ट देता रहा। उसके फलस्वरूप मेरे मन में विचार आया कि जब मैं इतनी तपस्या कर रहा हूँ, तो मेरी प्रशंसा होनी चाहिएँ परन्तु साथी तपस्वी मेरी तारीफ नहीं कर रहे थे, मुझे बहुमान नहीं दे रहे थे और न सत्कार–सम्मान ही करते थे। इससे मेरे अन्दर ईर्ष्या, अभिमान की वृत्ति पैदा हुई और मैं सोचने लगा कि तापसों को दंड देने के लिए क्या करना चाहिए ? इन लोगों की बुद्धि को ठिकाने लाने के लिए कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा और विचारों के अनुसार कार्य करने के लिए एक दिन अंधेरी रात में अपने साथी तापसों की कुटियाओं की ओर चल दिया।

अंधेरे में मुझे रास्ते का पता नहीं लगा। बाहर रात का अंधेरा हो रहा था और अंत्र में कषायों से अंधेरा छाया हुआ था, इसलिए अंधेरे में भटकते हुए एक गड्‌ढे में गिर जाने से मेरे शरीर में जगह–जगह चोटें आ गयीं और उनकी वेदना से कराहता हुआ चिल्लाने लगा। बार–बार अपनी वेदना से कराहते हुए गड्‌ढे से बाहर

निकालने के लिए चिल्लाता रहा, लेकिन कोई भी मेरे पास नहीं आया। मैं गड्ढ़े में पड़ा–पड़ा अपने आपको कोसने लगा कि चला तो था दूसरों को दंड देने, लेकिन खुद ही दंड भुगत रहा हूँ। इस माार्मिक वेदना से मुझे कुछ ज्ञान भी हुआ, जो पानी के बुलबुले के समान उसी समय नष्ट हो गया और वापस अज्ञान ने अपना प्रभाव जमा लिया। मैं आर्त्त–रौद्रध्यान में डूबा रह कर तरह–तरह के विचार करने लगा और उसी क्रोधावस्था में प्राण त्याग कर तापसों के आश्रम के पास सर्प रूप में पैदा हुआ।

जंगल में इधर–उधर फिरते हुए मैंने इस पवित्र सती आत्मा को देखा, तो क्रोधित होकर इसे डसने के लिए दौड़ा, किन्तु इसने नवकार मंत्र उच्चारण किया, तो मैं जहाँ का तहाँ रुक गया और अपनी जगह से सरक भी नहीं पाया। मैंने सोचा कि इसमें कोई दैवी–शक्ति है। फिर मैंने अपने आप में कुछ शांति का अनुभव किया।

उन्हीं दिनों जब भयंकर वर्षा हुई, तो आसपास में रहने वाले मनुष्यों और तपस्वियों का जीवन संकट में पड़ गया और वे सब अपनी रक्षा के लिए चिल्लाने लगे। उनकी वेदना देखकर सती ने अपने मुख से एक गम्भीर घोष किया, जिसके प्रभाव से चारों और होने वाली वर्षा बन्द होकर कुंड में ही होने लगी। इस आश्चर्य को देखकर तापस विचार में पड़ गये और वे सब गुफा में आये। सती के दर्शन कर उन्होंने कहा कि आपके पास कौन–सा मंत्र है, जिसके प्रभाव से यह वर्षा का संकट दूर हो गया है। वह मन्त्र हमें भी बताइए, तो सती ने मनुष्य–जन्म के महत्त्व को समझाते हुए जो उपदेश दिया था, उसे मैंने सुना, तो सोचने लगा कि मैं कौन हूँ ? क्या कर रहा हूँ ? और पास में बैठे तापसों की ओर एकाग्र होकर देखा, तो जाति–स्मरणज्ञान के प्रभाव से मालूम हुआ कि अपने इन साथियों पर अभिमान के वशीभूत होकर क्रोध करने से मैं सर्प हुआ हूँ। इस क्रोध ने ही मुझे बर्बाद किया है। मैं पश्चात्ताप करता हुआ सती का भक्त बन गया।

सती प्रतिदिन जो उपदेश देती, उसे मैं भी वहीं बैठा–बैठा सुनता रहता था और प्रण कर लिया कि जीव–जन्तुओं को खाना मेरे लिए अहितकर है। मुझे यह छोड़ना चाहिएँ मैं अहिंसा–व्रत अंगीकार करके साधना में तत्पर हो गया। साधना करते–करते आयुष्य पूर्ण होने पर मैं सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। अवधिज्ञान से जब मैंने अपने पूर्वजीवन की घटनाओं को जाना, तो ज्ञात हुआ कि इस पवित्र आत्मा से प्रतिबोध पाकर यह देव–शरीर मिला है, दुर्गति से छूटकर सद्गति में आया हूँ, तो आभार मानने और अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिए यहाँ आया और इसे गुरु मानकर इसको पहले नमस्कार किया है।

देव के वचनों को सुनकर श्रोताओं ने सोचा कि जब यह अपने आपको गुफा में रहने वाला सर्प बताता है, तो वे बोले–गुफा में रहने के बारे में आप अपने कुछ निशान बताइए ?

देव–आप प्रमाण चाहते हैं, तो गुफा में जाकर मेरे मरे हुए सर्प के शरीर को देख सकते हैं।

देव के कथानुसार कुछ लोग गुफा में आये। वहाँ मरे हुए एक सर्प को देखकर बोले कि देव ने जो कुछ कहा, वह सच है।

प्रवचन–सभा में उपदेश सुनने के लिए जो तापस बैठे थे, वे देव से उसके पूर्वजन्म के वृत्तान्त को सुनकर सोचने लगे कि हम कठोर तप करते हुए भी सही विधिमार्ग को नहीं अपना सके। उन्होंने केवली भगवान से सही विधि–मार्ग बताने के लिए प्रार्थना की।

केवली भगवान ने तापसों की बात को सुनकर कहा–बन्धुओं ! आपकी भावना पवित्र है, परन्तु मैं उसको मूर्त रूप दिलाने की स्थिति में नहीं हूँ। यदि आप लोग जीवन को शांति के सही विधिमार्ग पर लगाना चाहते हैं, तो यहीं पास में स्थित यशोभद्र आचार्य के समीप जाकर पहले विधिमार्ग का ज्ञान करें और फिर अपने जीवन में उस विधि को अपनाने की कोशिश करें। मेरी तो समय–स्थिति अल्प है।

केवली भगवान के वचनों को सुनकर उन तापसों के कुलपति ने कहा–भगवन् ! मैं आपकी इस रहस्य–पूर्ण बात को समझ नहीं पाया। आप इस छोटी सी उम्र में मुनि बनकर इतने ज्ञानी बन गये कि आपके ज्ञान का उत्सव मनाने के लिए देवगण भी आते हैं, तो आप दूसरों को तारनेवाले अमूल्य कार्य को क्यों नहीं कर सकते हैं और कहते हैं कि मेरी समय–स्थिति अल्प है। अतः इसका समाधान करने की कृपा करें। इसके बाद आपके कथानुसार हम यशोभद्र आचार्य के पास जाकर सही विधिमार्ग का अनुसरण करेंगे।

केवली भगवान–आप लोग मेरा वृत्तान्त जानने के लिए उत्सुक हो रहे हैं, लेकिन उसमें कोई विशेषता नहीं है, फिर भी मैं आपके समाधान के लिए उसे सुना देता हूँ कि आप लोगों ने कोशल नरेश महाराज नल और महारानी दमयन्ती का नाम सुना ही होगा। उनके यशस्वी जीवन के बारे में भी कुछ न कुछ जानते ही होंगे। कुव्यसनों में फंस जाने के कारण महाराज नल को अपना राज्य वैभव छोड़कर जंगल में जाना पड़ा और उनके छोटे भाई कुबेर ने राज्य सत्ता अपने हाथ में ले ली। मैं उन्हीं कुबेर का पुत्र था। जवान होने पर मेरा विवाह चन्द्रपुर–नरेश की कन्या के साथ हुआ था। विवाह करके जब मैं अपने नगर को लौट रहा था, तो इस हरे–भरे पहाड़ी प्रदेश और वन की शोभा को देखने के लिए अपनी पत्नी के साथ इधर –उधर घूमने लगा। वन की शोभा को देखकर मन ही मन प्रमुदित होता हुआ और विचारों ही विचारों में चलता हुआ पहाड़ी पर चढ़ गया। पहाड़ी पर यशोभद्र नामक मुनिराज अपनी साधना करते हुए ध्यानस्थ बैठे हुए थे। मैंने पत्नी सहित उनके दर्शन किये और उनकी सौम्य मुखमुद्रा से आकर्षित होकर वहीं उनके निकट बैठ गया। मुनिराज की भी साधना में तल्लीनता और ध्यान की पराकाष्ठा देखकर मेरा मन वहाँ से हटने का नहीं हुआ और सोचने लगा कि ये अपने जीवन को सफल बनाने के लिए साधना में तल्लीन हो रहे हैं। इनका प्रभाव अलौकिक है और इनके मन में रागद्वेष की भावना

नहीं है। सौभाग्य से मुझे इनके दर्शन हुए हैं और इस विचार के साथ अंतर् में एक जिज्ञासा पैदा हुई कि ये विशिष्ट ज्ञानी हैं, तो क्यों न मैं अपनी आयु के बारे में निर्णय कर लूं? अतः अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते हुए मुनिराज से पूछा कि भगवन ! यदि आप बता सकते हैं, तो बताइए कि मेरी आयु कितनी है?

मेरे प्रश्न को सुनकर उन विशिष्ट ज्ञानी मुनिराज ने कहा कि भाई! स्पष्ट बात कहने पर तुम्हें कोई भय तो नहीं होगा? उत्तर में निवेदन करते हुए मैंने कहा–भगवन ! जो बात हो, वह स्पष्ट कहिएँ स्पष्ट जानने के लिए ही तो प्रश्न किया है। मुझे मरण का भय नहीं है, मैं तो मृत्यु को जीतना चाहता हूँ और मृत्यु के मार्ग को छोड़कर अमृत के मार्ग की ओर बढना चाहता हूँ।

मेरी बात को सुनकर उन्होंने अपने उपयोग को केन्द्रित करके बताया–राजकुमार! अब तुम्हारा आयुष्य पाँच दिन का शेष रहा है। इस बात को सुनकर इसी क्षण मेरे अन्तर् में विवेक जागृत हुआ कि इस मनुष्यतन को पाकर इन पाँच दिनों को भी सांसारिक विषयों में रत रहकर गंवा दिया, तो न मालूम मरकर कहाँ जाऊँगा, इसका मुझे पता नहीं लगेगा। पूर्वजन्म में मैंने ऐसे कौन–से कर्मों का उपार्जन किया कि सब साधन–सामग्री प्राप्त हुई, राजकुमार भी कहलाया और युवावस्था में प्रवेश करने पर इस सुन्दर स्त्री से विवाह भी हुआ। मुनिराज से अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते हुए पूछा–भगवन ! मैंने पूर्वजन्म में ऐसे कौन–से कर्म किये थे कि छोटी–सी उम्र में ही मुझे इस शरीर को छोड़ना पड़ेगा और मेरी पत्नी ने ऐसे कौन–से कर्म किये कि जिससे इसको वैधव्य का दुःख सहना पड़ेगा?

मुनिराज ने मेरी जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा–राजकुमार! तुमने पूर्वभव में साधना तो अच्छी की थी, जिसके फलस्वरूप तुम्हें यह सब साधन–सामग्री प्राप्त हुई। लेकिन माया करते हुए साधु–महात्माओं को अप्रासुक अनैषणीय दान दिया। उनके

कारण तुमने अल्प आयुष्य का बंध किया और तुम्हारी इस पत्नी ने भी पूर्वजन्म में इस माया भरे काम में सहयोग दिया था, जिससे इसने भी ऐसे ही कर्मों का बंध कर लिया। यदि अब भी चाहो, तो साधना के मार्ग पर चल कर इन पाँच दिनों के अन्दर भी अपने पूर्वजन्म के कर्मों का क्षय कर सकते हो।

मुनिराज की बात पर गम्भीर चिन्तन करते हुए पत्नी से बोला–तुमने मेरे जीवन का वृत्तान्त सुन ही लिया है। जब एक दिन की भागवती दीक्षा से जीवन का उद्धार हो सकता है, तब मेरे लिए तो पाँच दिन शेष हैं। अतः मैं इन पाँच दिनों में ही अपने जीवन को निर्मल और पवित्र बनाने के लिए प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ। इसलिए इस भव्य अवसर को मत चूको, मुझे धर्मसाधना में सहयोग दो।

पत्नी बुद्धिशालिनी थी। उसने सब कुछ सुनकर कहा–प्राणनाथ! संसार की यही दशा है और मैं सहर्ष आपको दीक्षा अंगीकार करने की अनुमति देती हूँ। पत्नी की अनुमति मिलने पर उसी समय मैंने आचार्य यशोभद्र से भागवती दीक्षा ले ली और उन्हीं के साथ पहाड़ पर विचरण करने लगा। इस तरह जब चार दिन बीत गये और पाँचवाँ दिन आया, तो मैंने सोचा कि जिन्दगी तो आज भर की है। अतः मैं अपनी साधना में रत हो गया। ध्यान करते हुए आत्मिक पवित्रता की सीढ़ियों पर आरोहण करते–करते जब चरम स्थिति पर पहुँचा, तो समस्त घाती–कर्मों का क्षय हो जाने से केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लिया। अब मेरा आयुष्य कुछ समय का रह गया है, इसीलिए आपको यशोभद्र मुनिराज के पास भागवती दीक्षा अंगीकार करने का संकेत किया है।

केवली भगवान के इस वृत्तांत को सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो गये कि इस भव्य आत्मा ने सिर्फ पाँच दिन में ही आत्मा की चरम स्थिति को प्राप्त कर लिया है। धन्य है इसके पुरुषार्थ को।

अपना वृत्तांत कहने के बाद केवली भगवान ने शुक्लध्यान में

अवस्थित होकर शेष अघाती कर्मों का छेदन करके अयोगीदशा प्राप्त की और समय—मात्र में शुद्ध, बुद्ध, निरंजन, निराकार बनकर मोक्षधाम को प्राप्त कर लिया।

केवलज्ञान—महोत्सव को मनाने के लिए आये हुए देवगण पार्थिव शरीर का संस्कार करने के बाद अपने—अपने स्थान को चले गये और कुलपति स्तब्ध—सा रह गया। दमयन्ती सोचने लगी कि अच्छा होता कि मैं भी केवली भगवान से अपने जीवन के बारे में कुछ पूछ लेती। ये मुनिराज तो मेरे परिवार में देवर के पुत्र थे। मेरे परिवार के व्यक्ति तो साधना करके जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लें और मैं ऐसी ही स्थिति में रह जाऊँ, यह मेरे लिए खेदजनक है। लेकिन हर्ष इस बात का है कि वन में आयी, तो केवली भगवान के दर्शनों का सौभाग्य मिला। यदि राजभवन में रहती, तो ऐसा अवसर मिलने वाला नहीं था। इसलिए जो कुछ हुआ, अच्छे के लिए ही हुआ।

❖ ❖ ❖

कर्मफल तो भोगना ही होगा

कुलपति सिंहकेशरी केवली के वचनों को ध्यान में रखते हुए अन्य तापसों के साथ कुलपति आचार्य यशोभद्र के पास आये। दमयन्ती व अन्य उपस्थित स्त्री–पुरुष भी उनके साथ थे और आचार्यश्री के समक्ष उस देखे हुए दृश्य का सारा वर्णन सुनाया।

वर्णन पूरा हो जाने के बाद कुलपति ने अपनी मनोभावना स्पष्ट करते हुए निवेदन किया–भगवन! आप मुझे सही उपाय बतलाइए, जिनको मैं मनसा, वाचा, कर्मणा अपने जीवन में स्थान देकर तदनुसार अपने जीवन का उत्कर्ष करते हुए परम शांति का निधान प्राप्त कर सकूं।

आचार्य यशोभद्र ने सब परिस्थिति पर विचार करके और कुलपति की तीव्रभावना को जानकर श्रमणधर्म की साधनाविधि समझायी। तत्पश्चात् कुलपति अपने जीवन का उत्थान करने के साधन रूप पंच महाव्रत, पंच समिति और तीन गुप्ति को धारण करने के लिए श्रमणवेश में उपस्थित हुए, तो दर्शकों ने सोचा कि कुलपति की तरह हम भी अपने जीवन को सार्थक बनायें और आध्यात्मिक विकास की साधना में लगें।

कुलपति को मुनिदीक्षा लेते देखकर दमयन्ती भी विचारमग्न हो गयी कि कुलपति तो मेरे निकट रहे और विवेक प्राप्त करके भाव–विशुद्धि की वृद्धि से अपने मनुष्यजीवन को सार्थक बनाने के मार्ग पर आरूढ़ हो गये हैं। लोग मुझे देवी के रूप में समझते हैं और

सिंहकेशरी केवली के ज्ञान में कुछ छिपा हुआ नहीं था। वे चाहते, तो मेरा सारा वृत्तान्त श्रोताओं को सुना सकते थे, परन्तु उन्होंने भी कुछ नहीं कहा। मैं भी साध्वी बनकर अपने जीवन का कल्याण करूं। यशोभद्र मुनिराज के समक्ष अपनी भावना को व्यक्त करते हुए बोली–भगवन् ! अपने जीवन का कल्याण करने के लिए मैं भी श्रमणधर्म को अंगीकार करना चाहती हूँ।

आचार्य यशोभद्र विशेष ज्ञानी थे। उन्होंने दमयन्ती के अन्तर्द्वन्द्व को समझकर सांत्वना देते हुए कहा–हे भव्यात्मा ! तुम चारित्र ग्रहण करना चाहती हो, यह बड़ी अच्छी बात है, लेकिन आपके लिए अभी श्रमणधर्म अंगीकार करने का अवसर नहीं आया है। अभी तो आपके कर्मों के भोग की विशेष स्थिति है। कुछ कर्म ऐसे निकाचित बांध रखे हैं कि जिनका भोग किये बिना छुटकारा नहीं है। इसलिए इस समय आपके गृहत्याग का प्रसंग नहीं बन सकता। किन्तु गृहस्थावस्था में रहते हुए जितनी साधना कर सको, उतनी करो। समय आने पर तुम गृहत्याग कर जीवन की साधना को साध सकती हो।

तब दमयन्ती ने आचार्य श्री से पूछा–भगवन् ! इस आत्मा ने पूर्वजन्म में ऐसे कौन से क्रूर कर्म किये हैं, जिनके कारण यह स्थिति बन रही है और पतिदेव बिछुड़ गये हैं। उनका पता नहीं कि वे इस समय कहाँ हैं? इस विषय में आप पूरी जानकारी करावें, तो बड़ी कृपा होगी।

दमयन्ती के इस मार्मिक प्रश्न को सुनकर आचार्य यशोभद्र ने कहा–देवी ! तुमने कैसे–कैसे कर्म बांधे, इस जिज्ञासा की शांति के लिए संक्षेप में तुम्हारे पूर्वजन्मों का कुछ संकेत करता हूँ। कई जन्म पूर्व की बात है, जब तुम्हारी आत्मा एक राजा की रानी थी। तुम्हारे वर्तमान पति ही उस समय भी तुम्हारे पति थे। राजा का नाम मम्मण था और रानी का नाम वीरमति। दोनों अज्ञान के वशीभूत होकर इन्द्रियों के विषय–भोगों को भोगने में सुख मानते थे और इसीमें

अपने जीवन की सार्थकता समझते थे। तुम्हारा पति अज्ञान के कारण अहिंसा को कुछ नहीं समझता था, हिंसा के कार्यों में उसे आनन्द आता था। अज्ञान के कारण वह शरीर और आत्मा को एक मानता था।

एक दिन मम्मण जंगल में शिकार खेलने जा रहा था, साथ में तुम भी थीं। जब साथियों को लेकर वह बड़ी उमंग के साथ जंगल की ओर बढ़ा, तो उसी मार्ग से एक मुनिराज अपनी शिष्य–मण्डली के साथ राजधानी की ओर आ रहे थे। उसने कभी मुनिराजों को देखा नहीं था, अतः उनको देखकर सोचने लगा, कल्पना करने लगा कि आज मैं शिकार खेलने जा रहा हूँ और ये मुंडित मस्तक वाले सामने मिल गये, तो अपशुकन हो गया है। आज शिकार मिलेगा या नहीं ? कुशलता से वापस लौट पाऊँगा या नहीं? और इन विचारों के अनुरूप कुछ अपशब्द भी उसके मुँह से निकल पड़े। साथ में रहने वाले आदमियों को उसने इशारा किया कि यह अपशकुन है, अपने लिए अहितकारी है और जंगल में जाने के बाद शिकार मिलेगा या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता है। ये नगर की ओर तो जा ही रहे हैं, इन्हें ले जाकर जेलखाने में बन्द कर दो और जब हम सकुशल लौट आयेंगे, तो उन्हें छोड़ देंगे, नहीं तो फिर इनकी खबर लेंगे।

मम्मण की बात सुनकर तुमने भी उसके विचारों का समर्थन किया, तो दोनों के विचार एक समान हो जाने से तुमने भी वैसे ही कर्मों का बंध कर लिया। एक सरीखे विचार जितने भी व्यक्तियों के बनते हैं, तो वे सामुदानिक रूप से कर्मबंध करते हैं। सामुदाणी कर्म उसे कहते हैं कि एक साथ कई व्यक्ति एक सरीखे कर्म बांधे और भोग भी एक साथ करें। जब जंगल से राजा वगैरह सभी लौट आये, तो सोचा कि अपशकुन जैसी कोई बात नहीं हुई है। तुम सभी वहाँ पहुँचे, जहाँ मुनिराजों को बंद किया हुआ था, तो देखा कि वे सब शांति से बैठे हुए हैं। उनके चेहरों पर किसी प्रकार की अकुशलता नहीं है। जेल भी उनके लिए महल सरीखा था। तुम्हारे उस कार्य से

मुनियों को बारह घंटे तक भूख—प्यास का परिषह सहन करना पड़ा, जिससे तुम दोनों ने ऐसे निकाचित कर्मों का बंध कर लिया है कि उसके फलस्वरूप तुम्हारा पति के साथ बारह वर्ष का वियोग हुआ है।

अन्य कर्मों का फलभोग भी इसी मनुष्य—भव में करोगी। फल—भोग पूरा हो जाने के बाद आगे चलकर जीवन का कल्याण कर सकोगी। इन बातों को सुनकर चिन्तातुर मत होना, घबराओ नहीं। बड़े—बड़े पुरुषों से भी भूल हो जाती है और उसका फल भोगना पड़ता है।

दमयन्ती के पूर्व—भवों का वृत्तांत सुनकर श्रोताओं में स्तब्धता छा गयी। सुनने वाले दंग रह गये। तापसों ने सोचा कि हमारे कुलपति तो मुनिधर्म अंगीकार करके आत्मकल्याण में लग गये हैं, हमें भी अपने जीवन की आलोचना करके सन्मार्ग पर चलना चाहिएँ उन्होंने यशोभद्र आचार्य से प्रार्थना की—भगवन् ! हमारे आश्रम में पधार कर हमें भी मुक्ति का मार्ग बतायें।

आचार्य यशोभद्र तापसों के आश्रम में पधारे और उनके उपदेशों से वहाँ के वातावरण में पवित्रता छा गयी। अज्ञान के वश तपस्या करने वाले अपने—अपने जीवन की आलोचना करके यथाशक्ति व्रत नियम लेकर आत्मसाधना करने लगे।

यशोभद्र आचार्य को वंदना करके सभी अपने—अपने स्थान पर लौट आये। दमयन्ती भी अपने पूर्वजन्म की करणी पर विचार करते हुए गुफा में आयी और आत्मचिंतन में लीन हो गयी कि यह आत्मा कैसे—कैसे कर्म करती है और उनका किस रूप में उसे फल भोगना पड़ता है। दूसरे—दूसरे विचार भी उसके मानसपटल पर उभर रहे थे।

दमयन्ती की इस ध्यानावस्था को देखकर पास में रहने वाली महिलाएँ मुग्ध हो रही थीं। वातावरण शांत था। इतने में ही गुफा के

द्वार पर एक पुरुष आया और जोर–जोर से बोला–मैंने एक व्यक्ति को देखा है। सम्भव है, वह आपका पति हो। मैं पहिचान तो नहीं पाया, फिर भी आचार्य यशोभद्र के मुख से जो वृत्तान्त सुना है, उससे मालूम हुआ है कि आपके पतिदेव भी इसी जंगल में हैं। मुझे उस व्यक्ति का नाम मालूम नहीं है। यदि आप पहचानने के चिह्न आदि बतायें, तो मैं ठीक तरह से पहचान कर कुछ बता सकूंगा।

इन शब्दों को सुनकर चिन्तन में बैठी हुई दमयन्ती सोचने लगी कि क्या मेरे पतिदेव यहाँ पहाड़ी के पास में हैं ? फिर यह जानने के लिए वह गुफा से बाहर आयी कि बोलने वाला व्यक्ति कौन है? दमयन्ती ने बाहर आकर देखा कि वह व्यक्ति ठहरने की बजाय तेजी से जंगल की ओर चलने लगा है। दमयन्ती ने उसको सम्बोधित करते हुए आवाज लगाई–ठहरो, ठहरो, पतिदेव को कहाँ देखा है? मैं पहचान के चिह्न बताती हूँ। ऐसा कहते हुए दमयन्ती उसके पीछे–पीछे भागी, तो वह पुरुष वृक्षों आदि के बीच और भी तेजी से दौड़ने लगा।

दमयन्ती उसके पीछे तेजी से भागते हुए सोचने लगी कि यह भी कैसा अजीब आदमी है, जो रुककर बात करने की बजाय तेजी से दौड़ रहा है। इन्हीं विचारों के साथ दौड़ते–दौड़ते जब दमयन्ती गुफा से काफी दूर आ गयी, तो उसने देखा कि आगे–आगे भागने वाला व्यक्ति गायब हो गया है। तब वह सोचने लगी अब क्या होगा? मैं कहाँ जाऊँ? मैंने देखा, वह कहीं स्वप्न तो नहीं था? क्या वह धोखा है? और ऐसा सोचते–सोचते वह एक वृक्ष के नीचे खड़ी हो गयी।

कुछ देर तक ऐसे ही खड़े रहने के बाद जब दमयन्ती स्वस्थ व शांत होकर चिन्तन करने लगी तो आभास हुआ कि उसे किसी ने भ्रम में डाल दिया है। तब उसने पुनः सोचा कि इस भ्रम को दूर करने का एक ही उपाय है कि पुनः आवाज दूं और यदि कोई व्यक्ति दिखायी न दे, तो अपने स्थान पर लौटने की कोशिश करूं। ऐसा

सोचकर उसने जोर से आवाज लगायी कि हे भाई! तुम कहाँ छिप गये हो? छिपो मत और जो बात हो, उसे बताओ। अधूरी बात कह कर छिप जाना, यह ठीक नहीं है।

दमयन्ती की आवाज का जब कुछ भी परिणाम नहीं निकला और काफी देर हो गयी, तो उसने सोचा कि इस जीवन में जो उतार–चढ़ाव आ रहे हैं, वे सब मेरी कसौटी के क्षण हैं। क्या मैं पुनः इस जंगल के बीच भटक गयी हूँ ? वह बोल उठी–अरे दैव, क्या अभी तक भी परीक्षा पूरी नहीं हुई है? अभी तक भी तू कसौटी पर कस रहा है? मुझे कहाँ–कहाँ भटका रहा है और कहाँ तक मुझे भटकायेगा? तुझे जो कुछ करना हो, कर लो। मैं अपनी साधना से डिगने वाली नहीं हूँ। फिर वह सोचने लगी कि अब और आवाजें लगाने से कोई फायदा नहीं है। पूर्वजन्म में जो कर्म किये हैं, उनका ही यह फल है। फिर जैसे ही वह गुफा की ओर लौटने के लिए तैयार हुई कि पुनः भ्रम में पड़ गयी। उसे ख्याल ही नहीं रहा कि यहाँ से गुफा की ओर कौनसा रास्ता जायेगा? वह इधर–उधर भटकने लगी।

इतने में ही दमयन्ती ने एक विकराल स्त्री को सामने से आते हुए देखा। उसकी जटाएँ बिखरी हुई थी, बड़े–बड़े दांत थे, शरीर काला–कलूटा था। जैसे ही वह विकराल आवाजें करती हुई दमयन्ती के सामने आयी, तो दमयन्ती ने सोचा–यह क्या है? भागने से तो कुछ नहीं होगा? मन में कमजोरी आ गयी, तो सामने वाला कुछ बिगाड़े या न बिगाड़े, लेकिन मन की कमजोरी ही मुझे खा जायेगी। धैर्य न रखने वाला ऐसे दृश्यों को देखकर प्राण छोड़ देता है। मैं अपनी आत्मिक शक्ति को सबल रखूंगी, तभी जिन्दा रह सकती हूँ। अतः वह साहस के साथ खड़ी होकर बोली–तू कौन है? कहाँ से आयी है?

वनचरी–मैं वनचरी हूँ। मैं आदमी को खाती हूँ। मैं कई दिनों से भूखी हूँ और तुझे खाने को आयी हूँ।

वनचरी के मुख से अपने खाने की बात सुनकर दमयन्ती साहस के साथ बोली–अरे! तू तो स्त्री होने के नाते मेरी बहिन है और तूने अपना जो कुछ भी परिचय दिया उससे मालूम होता है कि तू वन में रहने वाली कोई मानव स्त्री है। क्या अपने इस डरावने रूप से यह बताना चाहती है कि मैं देवी हूँ, लेकिन देव मांसाहारी नहीं होते हैं और जो तू कहती है कि मांसाहारी हूँ, तो मैं जानती हूँ कि तू देवी नहीं, मनुष्य है और उसमें भी स्त्री। तू स्त्री जाति को कलंकित कर रही है। मांस मनुष्य का खाना नहीं है। मनुष्य का खाना तो शाकभाजी है। तू मानव होकर भी यदि किसी के कलेजे पर चोट पहुँचाये, तो सारी मानवजाति पर कलंक लगा रही है। मैं भी तेरी जैसी मानव हूँ। जंगल में रहने के कारण तुझमें शारीरिक ताकत कुछ अधिक हो सकती है, परन्तु मानसिक ताकत कतई नहीं है। नारीजाति को धब्बा मत लगा और अपने आप में कुछ सोच–विचार कर।

वनचरी–अरी! तू मुझे उपदेश देने वाली कौन है? मैं जंगल में रहने वाली निशाचरी हूँ। मुझे उपदेश देने वाला कौन है? तू अपने बचाव के लिए ही यह सब दाँव–पेच खेल रही है। परन्तु मैं इन उपदेशों से प्रभावित होने वाली नहीं हूँ। तू अपने बचाव के लिए चाहे कितने ही उपाय कर ले, किन्तु याद रख....। और डराने के लिए वह अपने पंजों को फैलाते हुए आगे बढ़ी।

दमयन्ती ने राक्षसी को अपने सामने बढ़ते देखा, तो पंच परमेष्ठी का ध्यान करके गम्भीर स्वर में बोली–जबसे मैंने होश सम्भाला है, तबसे अपने जीवन में एकनिष्ठ और अपने धर्म पर अटल रही हूँ। अतः हे शीलरक्षक देव! आपकी साक्षी में यह उपसर्ग हटता है, तो उतने समय के लिए और यदि इस उपसर्ग से प्राण जाते हैं, तो जावजीव के लिए सागारी संथारा लेती हूँ। फिर वह परमात्मा का ध्यान करती हुई शांति के साथ समभावपूर्वक वहाँ खड़ी हो गयी।

इस प्रकार दमयन्ती को ध्यानस्थ अवस्था में खड़ी देखकर वह कुछ सहमी हुई–सी आगे बढ़ने के लिए डग भरने लगी, तो उसी समय उसे ऐसी गम्भीर आवाज सुनायी पड़ी कि जिससे उसके पैर आगे बढ़ने से रुक गये और उसके मन में हलचल मच गयी कि यह क्या हो गया? मालूम होता है कि यह तो जंगल की देवी है। वह डरकर पीछे की ओर हट गयी।

वनचरी के डरकर पीछे हट जाने पर दमयन्ती ने सोचा कि यह सब आत्मिक शक्ति का प्रभाव है, धर्म का प्रभाव है। यदि मैं इस पर समता का भाव न लाती और क्रूर भावना रखती, तो इसकी भी क्रूर भावना बनती। परन्तु मैंने द्वेष नहीं रखा, समभाव में रही, तो इसकी भी क्रूर भावना शांत हो गयी। अब इसको दिलासा देनी चाहिएँ ऐसा सोचकर पंच परमेष्ठी का उच्चारण करते हुए वनचरी को सम्बोधित करते हुए बोली–बहिन! तुम घबराओ नहीं। मैं देवी नहीं, किन्तु मनुष्य हूँ। मैं तुमको सताना नहीं चाहती, किन्तु मानवता का सही रास्ता बताना चाहती हूँ। तुम खड़ी रहो। घबराओ नहीं। तुम अपनी वृत्ति को बदलो। तुम किसी को डराओ नहीं। मैं तो तुम पर प्रेमभाव रखती हूँ।

दमयन्ती के इन मधुर वचनों को सुनकर वनचरी कुछ आश्वस्त हुई, परन्तु उसे अभी भी विश्वास नहीं हो रहा था कि यह देवी नहीं, मनुष्य है और सोचने लगी कि मैंने तो इस पर आक्रमण करने का विचार किया था, लेकिन यह तो मेरे साथ प्रेम और स्नेह का बर्ताव कर रही है। इसमें कोई अलौकिक शक्ति है। वह नमस्कार करते हुए बोली–देवी! मैं नमस्कार करती हूँ। मुझे शांति दो, मैं शांति चाहती हूँ।

इस प्रकार दमयन्ती ने अपने आत्मिक बल से क्रूरता पर विजय प्राप्त करके वनचरी को सन्मार्ग की ओर उन्मुख कर दिया। आत्मबल में अद्भुत शक्ति होती है। इस बल के सामने संसार का कोई भी बल टिक नहीं पाता है। इस बल में ऐसी क्षमता है कि इसके

प्रभाव से सृष्टि के बीच रहे हुए सूक्ष्म–तत्त्वों में ऐसी हल–चल होती है कि वे व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। आप तीर्थंकरों के जन्म–समय को देखें, जब वे माता की कुक्षि से बाहर आते हैं, तब एक क्षण के लिए सारे संसार में शांति का वातावरण छा जाता है। नरक में रहने वाली आत्माएँ भी शांति का अनुभव करती हैं। लेकिन जिसमें आत्मबल नहीं है, वह भले ही अन्यान्य बलों का अवलम्बन ले ले, किन्तु सफल नहीं हो सकता है। मृत्यु के समय अनेक क्या, अधिकांश व्यक्ति दुःख का अनुभव करते है। बड़े–बड़े योद्धा भी, जिनके पराक्रम से संसार थर्राता है, मृत्यु को समीप देखकर कातर होते हैं, दीन हो जाते हैं, लेकिन जो व्यक्ति आत्म–बली होते हैं, वे मृत्यु का आलिंगन करते समय रंचमात्र भी खेद नहीं करते। मृत्यु उन्हें स्वर्ग, अपवर्ग की ओर ले जाने वाले देवदूत के समान मालूम पड़ती है।

आप लोग सोचते होंगे कि आत्मा का बल कैसे प्राप्त करें? शारीरिक बल प्राप्त करने के लिए तो बाजार में दवाई आदि मिल जाती है और उसके प्रयोग से शरीर में ताकत आने लगती है। इसी तरह यदि आत्मबल प्राप्त करने के लिए भी दवाई मिलने लगे, तो अच्छा रहेगा। ऐसे विचार एक दो व्यक्तियों के नहीं, प्रायः दुनिया के अधिकांश व्यक्तियों के होंगे। आत्मबल का सही रूप मालूम नहीं होने से वे कुछ का कुछ सोचते हैं। आत्मबल को प्राप्त करने की क्रिया सादी है, लेकिन क्रिया करने वाले का अंतःकरण सच्चा होना चाहिएँ वह क्रिया यह है कि अपने बल को छोड़ दो अर्थात् अपने बल का जो अहंकार तुम्हारे मन में आसन जमाये बैठा है, उस अहंकार को निकाल बाहर करो। जब तक तुम अपने बल अर्थात् अपने शरीर या अन्य भौतिक साधनों के बल पर निर्भर रहोगे और उसका अंहकार करोगे, तब तक आत्मबल प्राप्त नहीं हो सकेगा। आत्मबल को प्राप्त करने के लिए आत्मा के विकार दूर करने पड़ेंगे। आत्मविकार ज्यों–ज्यों हटते जायेंगे, वैसे–वैसे आत्मा की शक्ति का आविर्भाव होता जायेगा।

दमयन्ती और वनचरी दोनों बहुत देर तक आपस में बात—चीत करती रहीं। दमयन्ती ने उसे जीवन की सार्थकता के बारे में समझाया, जिससे उसे अपने आप में शांति का अनुभव हुआ और बाद में फिर से आने का कहकर वनचरी जंगल की ओर चल दी।

वनचरी के चले जाने के बाद दमयन्ती ने सोचा कि अब काफी देर हो गयी है। मैं भी गुफा की ओर चलूं। आसपास में पानी मिल जाये, तो पहले प्यास भी बुझा लूं और ऐसा सोचकर उसने चारों ओर नजर दौड़ायी, तो कुछ दूरी पर पानी दिखायी दिया। पानी पीने के विचार से वह उस ओर तेजी से बढ़ी, लेकिन वहाँ पहुँचने पर देखा, तो मालूम हुआ कि यहाँ कोई तालाब आदि नहीं है। यहाँ पानी का भ्रम हो गया था। जब दूसरी ओर नजर गयी, तो उधर भी पानी दिखा, लेकिन वहाँ पहुँचने पर भी पहले जैसी हालत हुई, तो वह सोचने लगी कि यह तो मृगतष्णा सरीखा दृश्य है। हे दैव ! तू चाहे कितना भी प्रयत्न कर ले, किन्तु मैं अपने पथ से डिगने वाली नहीं हूँ।

इधर—उधर भटकने के बाद एक ऐसे स्थान पर पहुँची जहाँ जमीन कुछ पोली और गीली सी मालूम हुई। यहाँ पानी होना चाहिए, ऐसा अनुमान लगाकर उसने पैर की ठोकर लगायी, तो वहाँ गड्ढ़ा बन गया, जिसमें पानी था। पानी को देखकर उसने शरीर को स्वच्छ किया और प्यास बुझायी।

बन्धुओं ! पानी जीवन के लिए एक आवश्यक तत्त्व है। यदि गहराई से विचार किया जाये, तो पानी से अधिक दूसरा कोई मूल्यवान पदार्थ नहीं है। चांदी, सोना, जवाहरात आदि सब कुछ हों, परन्तु पानी न हो, तो उनकी कीमत कौन करेगा? अन्न हो और पानी न हो, तो उसकी कीमत कौन करेगा? जितनी कीमत पानी की है, उतनी दूसरी चीजों की नहीं हो सकती। दूसरे पदार्थ भी अपनी—अपनी जगह पर महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु पानी मिल जाता है, तो जीवन मिल जाता है। जीवन में पानी की प्रधानता है। अन्न भी पैदा होता है, तो

पानी से और जीवन टिकता है, तो पानी से, परन्तु आज का मानव पानी का तिरस्कार कर रहा है और इन सोने–चांदी, महल–मकान आदि को मूल्यवान समझ रहा है। कितनी विडम्बना–पूर्ण स्थिति है!

शरीर स्वच्छ करने के बाद दमयन्ती वहीं पास में एक वृक्ष की छाया में बैठकर सोचने लगी कि इन वृक्षों को देखो, जो स्वयं गर्मी सर्दी आदि में खड़े रहकर भी दूसरों को शांति देते हैं। यदि मेरा जीवन भी ऐसा ही बन जाये, तो अच्छा हो। मैं भी दूसरों को शांति दूं, दूसरों को शांति का अनुभव कराऊँ, उन्हें शांति प्राप्त करने का उपाय बताऊँ। पानी पीने और विश्राम करने से थकावट भी दूर हो गयी है। मुझे भय तो है ही नहीं और न कोई मुझे अपने स्थान से गिरा सकता है। इसलिए वह गुफा की ओर न जाकर वहीं ध्यान करने बैठ गयी।

चिन्तन में डूबी हुई दमयन्ती अपनी आत्मा को सम्बोधित करते हुए सोचने लगी कि इस संसार में परिवार, समाज और राष्ट्र की जो व्यवस्था बनी है, उससे आत्मा का उत्थान नहीं हो सकता। परन्तु अपने स्वरूप की दृष्टि से चिन्तन करें, तो मेरा स्वभाव अलग है। यह परिवार स्थायी रूप से रहने वाला नहीं है। जब जन्मा था, तब परिवार को नहीं समझा था। इन सब सम्बन्धों को छोड़कर चले जाना है और फिर कहीं न कहीं इसी प्रकार भटकते रहना है। अतः आत्मिक स्वभाव को प्राप्त करने के लिए मैं क्यों न एकत्वभावना में रमण करूं?

इस प्रकार के चिन्तन में झूलती हुई दमयन्ती वन में भी अपने आत्मिक गुणों रूपी परिवार के साथ आनन्द का अनुभव कर रही थी। उसे यह भी पता नहीं था कि कौन आ रहा है और कौन जा रहा है। वह तो एकत्वभावना के साथ हर्ष–विभोर होकर आत्मा में रमण कर रही थी।

❖ ❖ ❖

राजा ऋतुपर्ण की राजधानी में

दमयन्ती जिस वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ बैठी हुई थी, उससे कुछ दूर रास्ते से जाते हुए पथिकों के समूह ने उसे देखा। इस भयंकर जंगल में ध्यानस्थ बैठी हुई अकेली स्त्री को देखकर उनके विस्मय का पार न रहा कि यह कौन है? इस वीरान जंगल में अकेली स्त्री का रहना और जंगल के वातावरण से भयभीत न होकर प्रसन्न–मुद्रा में ध्यानस्थ बैठना असम्भव है। ये देवी है या कोई मनुष्य है? और वे कुछ समय के लिए स्तम्भित–से होकर आपस में कानाफूसी करने लगे–वृक्ष के नीचे यह कौन बैठी है?

कुछ देर तक गौर से देखने के बाद उनमें से एक व्यक्ति ने कहा–यह हर्ष–विभोर हो रही है, तो क्या यह कोई योगिनी है?

दूसरा–है तो कोई न कोई जंगल में रहने वाली मानव स्त्री। सम्भव है कि इसके पतिदेव आस–पास में कहीं घूम रहे हैं या पानी लेने गये हैं। इसीलिए निश्ंचित होकर यह वृक्ष के नीचे बैठी है और चिन्तन कर रही है। देखो, इसकी प्रसन्न मुख–मुद्रा को देखो।

इस प्रकार आपस में बातचीत करने के बाद चार–पाँच व्यक्तियों के साथ उनका प्रमुख आगे बढ़ा। जब वे सब नजदीक आ गये, तो दमयन्ती की आकृति को देखकर उन्होंने अनुमान लगाया कि यह कोई साधारण घराने की नहीं, किंतु किसी ऊँचे कुलीन घराने की पुण्य–शालिनी महिला है। कुछ क्षण मौन रहकर पूछा–आप कौन हैं ? यहाँ कैसे पधारीं? आपके पतिदेव कहाँ हैं? आपके परिवार के और

दूसरे सदस्य कहाँ रहते हैं ? यहाँ बैठने का आपका प्रयोजन क्या है ? कृपा कर हमारी जिज्ञासाओं का समाधान कीजिएँ

पथिकों की बात को सुनकर दमयन्ती ने सोचा कि जैसे पहले व्यापारी–बंधु मिले थे, वैसे ही ये भी मालूम पड़ते हैं। उनकी जिज्ञासा को शांत करने के लिए वह मधुर स्वर में बोली–महानुभाव ! आप मेरा परिचय पूछ रहे हैं, लेकिन मैं अपनी स्थिति के बारे में अपने मुँह से क्या कहूँ, फिर भी संक्षेप में बताये देती हूँ कि मेरे धर्मपिता और धर्मभाई के रूप में एक व्यापारी तापसपुर नामक नगर में रहते हैं। आप मुझे तापसपुर का रास्ता बता दीजिएँ

इस वार्तालाप से पथिकों ने स्थिति का कुछ अनुमान लगा लिया कि यह विपत्तिग्रस्त अवश्य है, लेकिन है यह बुद्धिमान। सौम्य आकृति को देखने से मालूम होता है कि किसी कुलीन घराने की है। इसको अकेले नहीं छोड़ना चाहिएँ अपने प्रमुख को सम्बोधित करते हुए कहा–आप हमारे मुखिया हैं, हमें इस स्थिति पर गम्भीरता से विचार करना चाहिएँ सूर्यास्त होने वाला है। अगर हमने रास्ता बता भी दिया, तो इसको अकेले जाना पड़ेगा। रात्रि का समय होने से रास्ते में जंगली जानवरों का भय भी हो सकता है। हमें सद्भावना से एक विपत्तिग्रस्त नारी को संरक्षण देने का मौका मिला है। अगर उसे खो दिया, तो यह हमारे लिए अच्छी बात नहीं होगी।

साथी की बात पर विचार कर प्रमुख बोला–तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। उसके जीवन की रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। फिर दमयन्ती की ओर देखकर वह बोला–बहिन! तुम मुझे अपना भाई समझो। मेरे वचन पर विश्वास करो। कोई खतरा होने वाला नहीं है। हमारे साथ में और भी स्त्रियाँ हैं। हम जिधर चल रहे हैं, उसी रास्ते से तुम भी हमारे साथ चलो। यदि तापसपुर जाना चाहोगी, तो वैसा प्रबन्ध कर देंगे, लेकिन हम तुम्हें इस बियावान वन में अकेला नहीं छोड़ना चाहते हैं। अगर हमारे साथ चलने की इच्छा हो, तो आगे चल देंगे और नहीं तो रात्रि–विश्राम का प्रबन्ध यहीं करेंगे।

दमयन्ती ने पथिकों के प्रमुख की बात को सुनकर सोचा कि इनकी बात में प्रामाणिकता भरी हुई मालूम होती है। इन पर विश्वास किया जा सकता है। पहले के व्यापारियों के समूह ने जैसे मेरी रक्षा के लिए प्रयत्न किया था, वैसे ही ये भी मेरी रक्षा करना चाहते हैं। ये अकेले नहीं हैं, महिलाएँ भी इनके साथ हैं। मुझे भी इस जंगल को पार करना है। ये कितने भले हैं कि मुझे अकेली छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। इसलिए व्यर्थ में इनको कष्ट दूं, यह अच्छी बात नहीं हैं। ऐसा सोचकर वह बोली–मैं आप लोगों के साथ चलने को तैयार हूँ।

रात भर यात्र करते–करते प्रातः सूर्योदय होने के करीब सभी यात्री एक नगर के पास पहुँचे। नगर बहुत ही भव्य था। सब प्रकार की सुविधा देखकर विश्राम करने के लिए उन्होंने वहाँ पड़ाव डाल दिया। रथ में बैठी स्त्रियों से यहीं पर दातुन, स्नान आदि अपनी दैनिक चर्या से निवृत्त होकर गृहकार्य करने को कहा, तो उन सभी के साथ दमयन्ती भी नीचे उतर गयी।

दमयन्ती अपनी प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर बावड़ी के पाल पर आकर बैठ गयी।

प्रभातकाल होने से नगर की महिलाएँ पानी भरने के लिए बावड़ी पर आने लगीं और कुछ ही समय में पनघट पर पनिहारिनों का एक अच्छा समूह इकट्ठा हो गया। उनकी दृष्टि जब पाल पर बैठी हुई दमयन्ती पर पड़ी, तो वे आश्चर्यचकित हो गयीं कि यह कौन है ? कहाँ से आयी है? यहाँ क्यों बैठी है? आकृति से तो भव्य दिख रही है। यह कोई भाग्यशालिनी नारी है, लेकिन इसके चेहरे पर आन्तरिक उल्लास और प्रफुल्लता नहीं दिख रही है। हो सकता है, यह कोई मुसीबत की मारी हो। इसका चेहरा भी अपनी महारानी से मिलता–जुलता है, परन्तु यह है कौन? और उनमें से कुछ चतुर महिलाओं ने सोचा कि इससे बात–चीत करके परिचय पूछें कि यह किसलिए आयी है और क्यों बैठी है ? परन्तु कुछ ने विचार किया कि

यकायक पूछने से मतलब नहीं निकलेगा और जब पानी भरकर बावड़ी से बाहर आयेंगे, तब कुछ देर शांति से बैठकर पूछेंगे।

बावड़ी की पाल पर बैठी हुई दमयन्ती जिस नगर को देख रही थी, वहाँ के महाराज का नाम ऋतुपर्ण और महारानी का नाम चन्द्रप्रभा था। उनकी कीर्ति चारों दिशाओं में फैल रही थी, वे चन्द्रमा की तरह यश वाले थे। वहाँ के निवासी पर–दुःखकातर और न्याय–नीतिपूर्वक व्यवहार करने वाले थे। देवपुरी के अनुरूप शोभा देखकर दमयन्ती आश्चर्य–चकित हो रही थी। नगर की शोभा देखने के साथ–साथ पानी भरने के लिए आने–जाने वाली महिलाओं की ओर भी वह देख लेती थी और उनके चेहरे पर झलक रहे भावों को समझने का प्रयत्न कर रही थी।

पनघट पर आने वाली स्त्रियों में राजभवन की दासियाँ भी थीं। वे भी दमयन्ती को वहाँ बैठे देखकर विस्मित हो रही थीं। अपने–अपने कलश भरने के बाद जब वे बावड़ी से बाहर आयीं, तो बावड़ी से कुछ दूर आपस में यह तय करने के लिए खड़ी हो गयीं कि पहले इनसे कौन बातचीत करे?

राजभवन की दासियों ने स्थिति को देखकर सोचा कि इनसे बातचीत करने के पहले हमें महारानी जी को सूचना दे देनी चाहिएँ महारानी जी की जैसी आज्ञा होगी, वैसा करेंगे और राजभवन की ओर जाते समय वे अपने मन के भावों को प्रगट करते हुए कह रही थीं कि देखो इसकी आकृति कितनी भव्य और कितनी सौम्य है?

राजभवन में पहुँचकर दासियाँ अपने–अपने कलशों को यथास्थान रखकर महारानी के पास आयीं और निवेदन किया–आज जब हम पानी भरने के लिए बावड़ी पर पहुँची, तो हमने वहाँ पर कहीं से आयी हुई एक बहुत ही भव्य, सौम्य, सुन्दर महिला को देखा है। उसकी आकृति भव्य और शालीन है, जिससे हमें अनुमान हो रहा है कि वह बहुत ही कुलीन घराने की होनी चाहिएँ

हमने तो उससे बातचीत नहीं की, लेकिन नगर की अन्य महिलाएँ उससे बातचीत कर रही थीं। गौर से देखने पर ऐसा मालूम हुआ कि इसकी आकृति आपसे मिलती–जुलती है। मालूम होता कि वह आपकी हूबहू–नकल है, मानो आपकी ही सन्तान हो। स्वभाव भी मधुर और शांत मालूम होता है। आपकी आज्ञा हो, तो वहाँ जाकर बातचीत करके सारा वृत्तान्त पूछें, उसके विचारों को जाने और मानसिक स्थिति का पता लगायें कि उसे यहाँ किस कारण आना पड़ा है और वह कहाँ जाने वाली है? यदि आपकी आज्ञा हो, तो ऐसा प्रयास करें, जिससे कि वह यहाँ आकर आपसे मिल सके।

दासियों की बात सुनकर महारानी के मन में सहज ही एक जिज्ञासा पैदा हो गयी कि क्या मेरी आकृति की समानता करने वाली कोई दूसरी नारी इस विश्व में है? मेरी समानता करने वाली यह कौन स्त्री है? उसकी आकृति देखकर ये दासियाँ इतनी प्रभावित हो गयी हैं, तो ऐसी महिला को आमन्त्रित करके राजभवन बुलाना ही चाहिए और दासियों को सम्बोधित करके बोलीं–तुम उसको जल्दी से जल्दी यहाँ लाने की भरसक कोशिश करो।

महारानी की आज्ञा पाकर दासियाँ तेजी से पनघट पर आयीं और उन्होंने देखा कि अभी भी वह दिव्य महिला वहीं बैठी–बैठी नगर की अन्य महिलाओं के साथ बातचीत कर रही है। वे भी वहीं आकर खड़ी हो गयीं और उनकी बातें सुनने लगीं। दमयन्ती अपनी स्वाभाविक सरलता के साथ अपने मनोभावों को बता रही थी और सुनने वाली बड़े ध्यान से उसकी बातों को सुनकर प्रमुदित हो रही थीं, वे तो सुनने में इतनी मग्न हो रही थीं कि उन्हें समय का कुछ भी ध्यान नहीं रहा।

पनघट पर जो भी स्त्री पानी भरने आती थी, वह कुछ न कुछ देर के लिए खड़ी होकर उसकी बातें सुनने लगती थी। ऐसा करते–करते दमयन्ती के चारों ओर महिलाओं का एक अच्छा खासा

जमघट हो गया। वे सभी उत्सुकतापूर्वक दत्तचित होकर उसकी बातें सुन रही थीं। बातें सुनते–सुनते जब काफी देर हो गयी और अपनी बात कहने का मौका न मिला, तो वे अन्य सुनने वाली स्त्रियों से बोलीं–अरे! अभी तक तुम यहीं बैठी हो?

महिलाएँ–हाँ ! हमें तो समय का ध्यान नहीं रहा।

दासियाँ–हम महारानी जी की आज्ञा लेकर आयी हैं। हमें भी इनसे कुछ बातें करनी हैं।

उपस्थित महिलाएँ दासियों को बातें करने का मौका देने के लिए एक ओर हट गयी और बोली–अब आप लोग बातें करें। हमारी इच्छा है कि इनको अपने नगर में रखने का प्रयत्न होना चाहिएँ महारानी जी को भी हमारे भावों की जानकारी करा दीजिएँ

नगर की अन्य महिलाओं के हटने के बाद प्रमुख राजदासी ने दमयन्ती को प्रणाम करते हुए निवेदन किया–हे पुण्यशालिनी महाभागे! आपको मेरा शतशः प्रणाम।

दमयन्ती ने जब प्रणाम करते हुए महिला को देखा, तो कहा–बहिन! आप मुझको क्यों नमस्कार कर रही हैं? मैं नमस्कार योग्य नहीं हूँ। मैं तो एक साधारण स्त्री हूँ। आप किसी विशिष्ट गुणधारी आत्मा को नमस्कार करें। मैं तो आपके ही समान हूँ और आपके चरणों में मेरा भी कोटिशः वंदन है।

इस प्रकार पास्परिक अभिवादन करने के बाद दासी–प्रमुख ने अपना परिचय देते हुए पूछा–आप कहाँ की रहने वाली हैं? कहाँ से पधारी हैं ? आपका परिवार कहाँ है? और आपके पतिदेव कहाँ हैं?

दासी की बात सुनकर दमयन्ती सोचने लगी कि मेरे परिचय के बारे में बार–बार यहीं बातें पूछी जाती हैं और यह स्वाभाविक भी है कि जो भी मुझे देखेगा और बात करेगा, तो पहले परिचय के लिए इन बातों को पूछे बिना नहीं रहेगा। परन्तु अभी मैं स्पष्ट रूप से परिचय दूं, यह योग्य नहीं है और उत्तर में बोली–मैं कौन हूँ ? कहाँ

से आयी हूँ ? इसका भी उत्तर मैं आपको क्या दूं? जंगल से गुजर रहे पथिकों के साथ यहाँ आयी हूँ। मुझको साथ लाने वाले ये मेरे धर्मपिता और भाई हैं। मेरे पतिदेव कहाँ हैं ? इसका उत्तर अभी नहीं दे सकती, अभी मुझे उनके बारे में पता नहीं हैं। वैसे आप मुझे अपनी बहिन समझकर इन प्रश्नों के बारे में फिलहाल और अधिक पूछने की कोशिश न करें। इसके अलावा यदि आपको और कुछ पूछना हो, तो पूछ लीजिएँ

दमयन्ती के इन विचारों को सुनकर दासियाँ चकित हो गयीं कि इसकी बात में कितनी गम्भीरता भरी हुई है, कितनी प्रौढ़ता है और दृष्टि में कितनी सौम्यता एवं पवित्रता है। यह कोई विशिष्ट महिला है। यद्यपि इसके शरीर पर आभूषण नहीं हैं और वस्त्र भी साधारण हैं, फिर भी इसके चेहरे पर अलौकिक तेज झलक रहा है। मन ही मन विचार करते हुए आपस में इशारा करके उन्होंने अपनी प्रमुख को संकेत किया कि हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे हम इनको अपनी महारानी के पास ले जा सकें। महारानी जी अपने आप ही सब जानकारी कर लेंगी। आखिर हम तो दासियाँ ठहरीं और समझ के अनुसार ही बातें करेंगी। ऐसा सम्भव नहीं दिखता कि यह कुलीन महिला हमारे सामने अपने हृदय को खोल सके, इसलिए विशेष जानने के बारे में हमें चेष्टा नहीं करनी चाहिएँ

प्रमुख दासी उनके अभिप्राय को समझकर स्वर बदलते हुए बोली—आपने जो कुछ भी परिचय दिया, वह बहुत अच्छा है। इसके अलावा आप बिना जान—पहिचान वालों को इससे और अधिक क्या परिचय दे सकती हैं। यदि आपको कष्ट न हो, तो अपने चरणों द्वारा राजभवन को पवित्र बनाने की कृपा करें। हमारी महारानी जी आपसे मिलने के लिए आतुर हैं। जब हम पानी भरकर वापस राजभवन गयीं और उनके सामने आपका वर्णन किया, तो उन्होंने आपको लाने के लिए हमें भेजा है। आप अवश्य ही राजभवन में पधारें। किसी प्रकार की चिन्ता न करें। आपके राजभवन में पधारने से हमारा जीवन धन्य बनेगा।

दासियों के विनम्र अनुरोध को सुनकर दमयन्ती सोचने लगी कि इन्होंने जो अपना परिचय दिया है कि हम महारानी की दासियाँ हैं और जो नम्रता, शिष्टता तथा सद्व्यवहार बताया है, तो उससे सहज ही इनकी स्वामिनी के स्वभाव का परिचय मिल रहा है। यह मानी हुई बात है कि जो व्यक्ति जैसे व्यक्तित्व वाला होता है, उसके पास रहने वाले भी उसी प्रकार के गुणों से सम्पन्न होते हैं। इस समय मेरी असहाय जैसी स्थिति है। यद्यपि मैं अपनी आँतरिक शान्ति के कारण अपने आपको असहाय महसूस नहीं कर रही हूँ, फिर भी बाह्य शरीर की दृष्टि से मुझे अपने आपको असहाय मानना ही पड़ेगा। आखिर तो इस शरीर से काम लेना है। वन में रहकर मैंने कैसे–कैसे दृश्य देखे और किन–किन परिस्थितियों में से गुजरी हूँ, वे सब अनुभव मेरे सामने हैं। सद्भाग्य से व्यापारी सहायक मिल गये, नहीं तो बियावान जंगल में अपने आपको कैसे सुरक्षित रख पाती? मैं प्राणों की आहूति दे सकती हूँ, लेकिन स्त्री होने के कारण शारीरिक दृष्टि से तो असहाय ही हूँ। पुण्योदय से इन व्यापारियों का अच्छा योग मिल जाने से मैं यहाँ तक सुरक्षित आ गयी हूँ। यह नगर भी भव्य दिख रहा है। यहाँ के राजा, रानी और निवासी गुणवान और दयालु दिखते हैं। इनका व्यवहार, बोलचाल भी सभ्य है। यहाँ राजपरिवार का योग मिल रहा है और यहाँ रहने से जीवन का उत्थान हो सकेगा या नहीं, मुझे जाकर सब स्थिति देख लेनी चाहिएँ ऐसा सोचकर वह दासियों की ओर देखकर कुछ मुस्कराती हुई बोली–आपकी महारानी जी की सद्भावना से मैं प्रभावित हुई हूँ। मैं भी ऐसी गुणवती और पुण्यशालिनी महिला के दर्शन करना चाहती हूँ। मैं उनकी वाणी सुनकर अपने कान पवित्र करना चाहती हूँ। मैं राजभवन को क्या पवित्र करूंगी, किन्तु स्वयं अपने आपको पवित्र बनाना चाहती हूँ। लेकिन जिन साधर्मी भाइयों के साथ आयी हूँ, उनकी अनुमति लेकर ही साथ चल सकूंगी।

दासियों को अपनी आँतरिक भावना बतला कर दमयन्ती

पथिकों के प्रमुख के पास आयी और विनम्रता के साथ बोली– भाई ! राजभवन की दासियाँ कह रही हैं कि आप महारानी जी से मिलने राजभवन में पधारें, महारानी जी आपसे मिलना चाहती हैं। क्या मैं राजभवन जा सकती हूँ ?

दमयन्ती के इस नम्रता भरे व्यवहार को देखकर पथिकों का समूह आश्चर्यचकित हो गया। उनका प्रमुख सोचने लगा यह कैसी अनुशासनप्रिय है, इसके जीवन में कितना अनुशासन है, वह मन में गद्–गद् होता हुआ नम्रता के साथ झुककर बोला–आप भाग्यशालिनी हैं, आपको मैं क्या आज्ञा दूं? आप राजभवन जाना चाहती हैं, तो जा सकती हैं, आपकी इच्छा हो, तो हम भी साथ चलें।

दमयन्ती–जैसी आपकी इच्छा। मेरे लिए कोई अपरिचित नहीं हैं। मैं जानती हूँ कि मेरी आत्मा के तुल्य सब आत्माएँ हैं, भले ही विकास की दृष्टि से अन्तर हो। मैं यदि जगत के लिए भली हूँ, तो जगत भी मेरे लिए भला है और मैं अपने आप में बुरी बनूंगी, तो जगत भी बुरा बन सकता है। इसलिए आप किसी प्रकार का विचार न करें।

दमयन्ती की बात सुनकर व्यापारी–प्रमुख दासियों की ओर देखते हुए बोला–आपको कोई एतराज न हो, तो हमारे समूह में से भी एक स्त्री साथ में भेज दें।

दासियाँ–आप किसी महिला को साथ भेजना चाहें, तो भेज सकते हैं। हमारी ओर से मनाई नहीं है।

इस सब वार्तालाप को नगर की अन्य स्त्रियाँ भी सुन रही थीं तथा नगर में जैसे–जैसे खबर फैलती गयी, तो दूसरे स्त्री–पुरुष भी वहाँ एकत्रित हो गये थे। जब दमयन्ती दासियों के साथ राजभवन की ओर चली, तो वे सभी उसके पीछे–पीछे चलने लगे।

इधर राजभवन में महारानी टकटकी लगाये दमयन्ती के आने की बाट देख रही थीं। उनकी इतनी उत्सुकता बढ़ी कि खाना–पीना

भी भूल गयीं। जब भी कोई समूह राजभवन की ओर आते देखतीं, तो समझने लगतीं कि शायद वही आ रही है।

जनसमूह के द्वारा घिरी हुई दमयन्ती जब दासियों के साथ राजमार्गों को पार करके राजभवन के द्वार पर पहुँची, तो उसे देखकर महारानी अवाक् रह गयीं कि क्या हमारी नारी जाति को सुशोभित करने वाली यही पुण्यात्मा है? उनके मन में अपूर्व उल्लास पैदा हुआ और सोचने लगीं कि यह तो हमारी कोई परिचित है।

दमयन्ती ने भी जब दूर से ही महारानी को देखा, तो सोचने लगी कि मेरी माता की सूरत से मिलती–जुलती यह स्त्री कौन है? कहीं मेरी मौसी तो नहीं हैं? खैर, कोई भी हो, मुझे अभी अपना परिचय नहीं देना है। इतनी बात जरूर है कि इनको देखकर मेरे मन में उल्लास बढ़ रहा है और मन चाहता है कि इनके चरणों में प्रणाम करके दिल खोलकर बातें करूं। परन्तु नहीं–नहीं, अभी बात नहीं करनी है। कदाचित् यह मौसी ही हों, तो भी अपने को छिपाये रखना है। जब तक पतिदेव का पता न लग जाये, तब तक मुझे गुप्तरूप से रहना ही ठीक है।

दमयन्ती के राजभवन में पहुँचने पर महारानी स्वागत करने के लिए अंतःपुर के द्वार तक आयीं। दमयन्ती ने भी सामने पहुँचकर चरणों में नमस्कार किया और दोनों एक–दूसरे के गले से लिपट गयीं तथा महारानी ने उसे स्नेह पूर्वक साथ ले जाकर अपने पास सिंहासन पर बिठा दिया।

स्वयं का राजभवन छूटने के बाद दमयन्ती ने पहली ही बार किसी राजा की राजधानी के भव्य राजभवन में प्रवेश किया था। इतने समय तक तो वह जंगल की कंकरीली–पथरीली जमीन के ऊपर, कंटकाकीर्ण मार्ग में, भयावने दृश्यों के बीच अपनी आत्मशांति को सुरक्षित रखते हुए जीवन के प्रवाह को आगे से आगे बढ़ाती जा रही थी। वन सम्बन्धी अनुभव अभी भी उसके मन में चक्कर काट रहे थे।

इस राजभवन में प्रवेश करने पर भी उसके मन में कोई उल्लास पैदा नहीं हुआ है और वह सोच रही थी कि इन सुख–साधनों की सामग्री का संयोग मिलने पर जो सुख मानता है और इनसे भिन्न संयोगों में दुखः मानता है, वह मूढ़ है। मैंने अपनी छोटी–सी जिन्दगी में दोनों स्थितियों का अनुभव कर लिया है। मेरे लिए ये राजभवन के साधन प्रमोद–जनक नहीं हैं। लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से यह बात जरूर है कि वन की कष्टप्रद स्थिति की अपेक्षा यहाँ कुछ सन्तोष है। फिर भी इतने मात्र से ही मुझे पूर्ण सन्तुष्ट नहीं हो जाना है, मुझे तो परिपूर्ण आत्मिक शांति प्राप्त करनी है। यहाँ महारानी ने जो स्नेह दिखाया है, उसे देख कर यह अनुभव करती हूँ, तो यह भाव उठ रहा है कि शायद ये मेरी मौसी हों। क्योंकि ऐसा स्नेह या तो माता ही कर सकती है या मौसी कर सकती है। परन्तु मुझे अपना परिचय नहीं देना चाहिएँ वह प्रसन्नता के साथ महारानी के निकट बैठी रही।

महारानी भी दमयन्ती को अपने पास बिठा कर अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव कर रही थीं और सोच रही थीं कि यह महिला जैसे ही मेरे पास आयी और मैंने इसे देखा, तो मेरे उल्लास का पार नहीं रहा। यह है कौन? दासियों से जो वृत्तान्त सुना, उससे यही मालूम हुआ कि इसने उनके सामने अपना परिचय नहीं दिया है। यह बड़ी चतुर नारी है। दासियों के सामने इस प्रकार का बर्ताव किया कि जिससे वे सब इससे प्रभावित हो गयीं और प्रभावित होती हुई भी इसके अन्तर् को नहीं पा सकीं। मैं कैसे इसके अन्तर् का पता लगाऊँ ? मरे मन में तो रह–रहकर यही विचार उठ रहा है कि वह मेरे परिवार की ही है।

ऐसा सोचकर महारानी ने दमयन्ती के सिर पर हाथ फेरते हुए अत्यन्त स्नेह के साथ मधुर स्वर में कहा–प्रिय सखी ! तुम कहाँ से आयी हो और कहाँ की रहने वाली हो ? कौन–सी भूमि ने तुम जैसी नारी को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त किया है? वह भूमि तो पवित्र हुई ही, लेकिन जहाँ–जहाँ तुम्हारे चरणों का स्पर्श हुआ, वह

धरती भी पवित्र बन गयी। तुम्हें देखने से आज मेरे नेत्र अत्यन्त उल्लास के साथ पवित्रता का अनुभव कर रहे हैं। मैं अपने जीवन को धन्य समझ रही हूँ कि एक नारी–रत्न के साथ वार्तालाप करने का अवसर प्राप्त कर सकी हूँ।

इस प्रकार अत्यन्त स्नेहपूर्वक प्रेम भरे वचनों द्वारा महारानी ने दमयन्ती के हृदयगत भावों को जानने की कोशिश की, किन्तु दमयन्ती भी राजपुत्री थी और नीति–व्यवहार में कुशल प्रवीण थी। अतः कृतज्ञ दृष्टि से महारानी की ओर देखते हुए मधुर स्वर में अपने भावों को व्यक्त करते हुए वह बोली–यह आपकी महान कृपा है कि मुझ सरीखी एक अबला नारी का इतना सत्कार कर रही हैं। यह आपकी महान उदारता है। आप सरीखी सत्ता–सम्पत्ति सम्पन्न महारानी मुझसे इतना स्नेह और प्रेम करें, यह अन्य महिलाओं के लिए शिक्षा लेने का बहुत सुन्दर उदाहरण है। कई बहिनें अपनी तुच्छ सत्ता और सम्पत्ति के अभिमान में फूल जाती हैं और अपने से कम सत्ता और सम्पत्ति वाली बहिनों से बोलना भी पसन्द नहीं करती हैं तथा उनका अपमान तक भी कर देती हैं, लेकिन जब अपने समान सत्ता व सम्पत्ति वाली बहिनें आती हैं, तो बड़े–बड़े हाथ फैलाकर और चेहरे पर हंसी–खुशी दिखाते हुए उनसे मिलती हैं, जान–पहिचान निकालती हैं। उनके स्वागत–सत्कार में जमीन–आसमान एक कर देती हैं। परन्तु भौतिक सत्ता–सम्पत्ति से विहीन सद्गुणी नारी को तो कोई बिरली ही स्त्री अपना सकती है। मैं आपमें सद्गुणों के प्रति आकर्षण के वृत्ति देख रही हूँ। मैं तो एक साधारण स्त्री हूँ। मेरे शरीर पर न कोई आभूषण है और न श्रृंगार। न मैं किसी दूसरे प्रकार से सत्ता–वैभव वाली हूँ। न मेरे रहने का ठिकाना है और न खाने का पता। फिर भी आप मुझे अपने समान मान कर जो स्वागत कर रही हैं, इसके लिए मैं अपने को भाग्यशाली समझती हूँ, मैं आपके उपकार से उऋण नहीं हो सकती।

यदि आप जैसी वृत्ति सब स्त्रियों में आ जाये और वे इस नाशवान सत्ता–सम्पत्ति के मोह को दूर हटाकर आत्मिक गुणों से समृद्ध, धार्मिक और गुणवाती, परन्तु कमजोर आर्थिक स्थिति वाली बहिनों के साथ आपके जैसा समतामय बर्ताव करने लगें, तो कितना आनन्द मिले ! अपनी नारी जाति की कितनी दयनीय दशा बन रही है, कैसी हीनभावना इस नारी जाति के जीवन में छा रही है, उसका मैं क्या निवेदन करूं? आप स्वयं समझदार हैं, बुद्धिमती हैं। आपकी यह जीवन–वृत्ति सबके लिए अनुकरणीय बने।

इस प्रकार की बहुत–सी नीतिप्रद बातें कहने के बाद जब परिचय देने की बात आयी, तो समय–समय पर पूर्व में दिये गये परचिय के अनुरूप यहाँ भी कह सुनाया।

महारानी चतुर थीं। वह समझ गयीं कि इन दासियों और साथ में आयी हुई दूसरी–दूसरी महिलाओं के सामने यदि इसे अपना परिचय ही देना होता, तो वहीं सबके बीच पहले ही दे देती। अतः वह दमयन्ती को एकान्त में ले जाकर बोली–बहिन! जो कुछ भी तुमने कहा, वह सब ठीक है। मेरी आँतरिक भावना यह है कि मेरी पुत्री चन्द्रवती, जो बचपन से इतनी गुणवती है कि जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकती, उसके लिए किसी अच्छी गुणवती सखी की आवश्यकता है। कन्याएँ बचपन से किसी न किसी सखी को ढूंढा ही करती हैं और गुणवती सखी के मिल जाने पर उनके गुणों में वृद्धि होती है, परन्तु दुर्गुणी सखी मिल जाये, तो सद्‌गुणी कन्याएँ भी दुर्गुणों की ओर मुड़ जाती हैं। खास तौर से देखा जाये, तो राजघराने की कन्याओं के लिए तो बहुत सावधानी बरतने की जरूरत है। मैं सोच रही हूँ कि मेरी गुणवती कन्या गुणों में आगे बढ़े, उसमें किसी प्रकार का दुर्गुण न आये। इसीलिए मैं चाहती हूँ कि इसे कोई योग्य सहेली मिल जाये, परन्तु अभी तक कोई ऐसी स्त्री नहीं मिल रही है, जिसे राजकुमारी की सहेली के रूप में रखूं। यद्यपि वर्षों से राजभवन में रहने से ये दासियाँ गुणवान बन गयीं हैं और मान–मार्यादा को भी

समझती हैं, फिर भी राजकुमारी को जैसी शिक्षा मिलनी चाहिए, वैसी नहीं मिल पा रही है। अतः आप जैसी गुणवती महिला के हाथों में अपनी कन्या को सौंप कर मैं निश्चिंत हो सकती हूँ। मैं उसे आपके साथ रखना चाहती हूँ और आप उसको अपनी छोटी बहिन, शिष्या आदि समझकर गुणवान बनाने का ध्यान रखें। दोनों बहिनें शरीर से दो होने पर भी गुणों से एक रूप में रहें, यही मैं चाहती हूँ। इसीलिए आप अपने बारे में कुछ विस्तार से बताइए कि आप कौन हैं और कहाँ से आयी हैं ?

महारानी के विचारों को सुनकर और उनकी उत्सुकता को देखकर दमयन्ती बोली–आप अपनी प्रिय आदर्श कन्या को मेरे साथ रखने का जो विचार कर रही हैं, वह आपकी महानता है। फिर भी एक अपरिचित के साथ कन्या को रखने के बारे में आपको गम्भीरता से विचार कर लेना चाहिएँ बिना आगा–पीछा सोचे यकायक निर्णय करने में भूल भी हो सकती है।

महारानी–मैं तुम्हारी स्पष्टवादिता और साहस की सराहना करती हूँ। तुम नीति का उपदेश दे रही हो कि अपरिचित व्यक्ति का विश्वास करने से पहले सब तरह से सोच लेना चाहिएँ लेकिन दूसरे व्यक्ति का चेहरा और उसके भाव स्वयं ही अपने अन्तर् की झलक दे देते हैं। मैं सक कुछ समझ चुकी हूँ और अपनी पुत्री को तुम्हारे पास ही रखूंगी।

महारानी की बात सुनकर दमयन्ती ने सोचा कि ये तो मुझे राजभवन में रखने का पूरा प्रयास कर रही हैं, लेकिन मैं भी तो समझ लूं कि मुझे क्या–क्या काम करने होंगे। उसने कहा–यह आपकी मेहरबानी है कि मैं राजकन्या के पास बहिन की तरह रहूँ, परन्तु मेरे जिम्मे और कौन–कौन से कार्य रहेंगे, यह भी बतलाइएँ तब रहने या न रहने के बारे में कुछ निश्चय किया जा सकता है। बिना जाने–समझे मैं पहले से कैसे कह दूं कि यहाँ रहूँगी या नहीं रहूँगी।

महारानी–राजकन्या के साथ–साथ राजपरिवार में रहने वाली महिलाओं और बच्चों का शिक्षण भी आपको करना है तथा राज्य की ओर से दानशाला चल रही है, जहाँ जरूरत–मन्दों को इच्छित दान दिया जाता है, उसमें भी आपको सहयोग देना है।

दमयन्ती ने महारानी की बात को सुनकर सोचा कि महिलाओं को शिक्षण देने या दानशाला के कार्य में योग देने से मैं अपने जीवन को व्यवस्थित रख सकूंगी। दानशाला में कई तरह के व्यक्ति आते हैं। कदाचित् मेरे पतिदेव भी जंगल से नगर की ओर चल पड़े हों, तो वे भी किसी न किसी वेश में दानशाला की तरफ आ सकते हैं। तब मैं उन्हें देख सकूंगी। इसलिए दानशाला का कार्य ठीक लगता है। अतः मन में कुछ निश्चय–सा करते हुए उसने कहा–महारानीजी! आपकी सब बातें अच्छी हैं और मेरे मन के अनुकूल हैं, लेकिन अभी मैं जिन महानुभावों के संरक्षण में हूँ, जब तक उनकी आज्ञा व स्वीकृति नहीं ले लूं, तब तक राजभवन में रहने का निश्चय कैसे कर सकती हूँ? मैं व्यापारियों के परिवार में से साथ आयी हुई बहिन को वापस ले जाकर उनकी अनुमति लेना चाहती हूँ।

दमयन्ती के विचारों को सुनकर महारानी ने सोचा कि जिनके साथ यह आयी हुई है, उनके प्रति यह कितनी कृतज्ञता प्रकट कर रही है। यह अनुशासनप्रिय महिला है। इसलिए जहाँ भी यह रहेगी, वहाँ सबको अनुशासनयुक्त बना देगी। वे बोलीं–आपका सोचना उचित है। मैं आपके विचारों की सराहना करती हूँ और दासियों को भी आपके साथ भेज देती हूँ।

महारानी के वचनों को सुनकर दमयन्ती हर्षविभोर हो गयी और दासियों के साथ वापस लौटने लगी, तो महारानी भी अन्तःपुर के द्वार तक साथ आयीं।

पनघट पर बैठी दमयन्ती को महारानी द्वारा बुलाये जाने के समाचार नगर के इस कोने से लेकर उस कोने तक फैल जाने से

सैकड़ों स्त्री–पुरुष राजभवन के द्वार पर इकट्ठे होकर प्रतीक्षा करने लगे कि वह दिव्य महिला राजभवन के बाहर आये, तो हम लोग भी उसके दर्शन कर लें। जब दासियों और राजभवन में बैठी अनेक स्त्रियों के साथ दमयन्ती बाहर आयी, तो जय–जयकार–पूर्वक स्वागत करते हुए वे सभी उसके साथ चलने लगे। महारानी भी झरोखे में से टकटकी लगाकर देख रही थीं। दमयन्ती भी पीछे फिर–फिर कर महारानी की ओर देख लेती थी।

नगर के प्रवेश–द्वार पर ठहरे हुए व्यापारी भी इन्तजार कर रहे थे कि वह गुणवती कब आये? तापसपुर में रहा हुआ व्यापारियों का समूह भी चरणचिह्नों को देखता–देखता नगर के बाहर आ पहुँचा था। उसने पहले से ठहरे हुए लोगों के पास ही अपना भी डेरा डाल दिया, जिससे चहल–पहल और ज्यादा बढ़ गयी।

अपने जैसे ही व्यापारियों को देखकर तापसपुर से आये बनजारों के मुखिया ने सती के बारे में पूछताछ की, लेकिन पूरी जानकारी नहीं मिलने से वह कुछ उदास हो गया। इतने में ही अपनी ओर आते हुए एक विशाल जनसमूह को देखकर सभी सोचने लगे कि ये कौन आ रहे हैं ? जैसे ही तापसपुर से आये व्यापारियों के मुखिया की नजर जनसमूह से घिरी हुई दमयन्ती की ओर गयी, तो वह हर्षविभोर होकर बोला–देखो! वह पवित्र सती आ रही है। दर्शनों के लिए सभी उत्सुक हो रहे थे और जैसे ही मुखिया के शब्द सुने, तो सब अनुशासन–पूर्वक खड़े हो गये।

जनसमूह के साथ आ रही दमयन्ती ने भी जब अपनी प्रतीक्षा में खड़े लोगों तथा तापसपुर से आये हुए व्यापारियों को देखा, तो कुछ लम्बे डग भरती हुई आगे बढ़ी। इसी तरह दोनों व्यापारियों के समूह के प्रमुख भी अपने–अपने साथियों को लेकर आगे आये और निकट आने पर जैसे ही दमयन्ती प्रणाम करके चरणस्पर्श करने के लिए झुकी, वैसे ही वे भी नमस्कार करते हुए उसके चरणों में झुके।

परस्पर एक दूसरे की क्षेम–कुशल पूछने के बाद दमयन्ती ने तापसपुर से आये हुए व्यापारियों की ओर देखकर उनके मुखिया से पूछा–आप कब पधारे?

मुखिया ने अपनी स्थिति बतलाते हुए कहा–बिना कुछ कहे–सुने जब आप वहाँ से चली आयीं, तो हम लोग घबरा गये और जंगल का कोना–कोना छान मारा, लेकिन आपका कुछ पता नहीं लगा। हम लोग अनेक प्रकार के संकल्प–विकल्पों में डूबे हुए खोज करने के लिए घूम रहे थे कि अकस्मात् एक बहुत बड़े जन–समूह के पदचिह्न दिखायी दिये, जो इस नगर की ओर आ रहे थे। उन्हें देखकर मन में विचार आया कि सम्भवतः इस समूह के साथ आप भी हों और बिना कहीं रुके दिन–रात चलते–चलते अभी थोड़ी देर पहले ही यहाँ आये हैं।

दमयन्ती ने तापसपुर से लेकर यहाँ तक पहुँचने के बारे में पूरी हकीकत बतलाते हुए महारानी जी से हुई बातचीत कह सुनायी।

दमयन्ती की बात सुनकर व्यापारियों की आँखों से आँसू निकल पड़े और वे सोचने लगे कि ऐसी पुण्यात्मा के साथ रहने से हमने थोड़े समय में ही महान शांति का अनुभव किया, लेकिन अब यह सती हमसे दूर होने जा रही है।

सभी की भावना को समझते हुए मुखिया गद्‌गद् होकर बोला–आप यह क्या विचार कर रही हैं? हम तो सोच रहे थे कि आप महारानी जी से बात करके वापस लौट आयेंगी। आपके साथ रहने पर हमें जो आध्यात्मिकता का उपदेश मिला और उससे जीवन में जो शांति का झरना बहने लगा, उसे आपके बिना हम कैसे कायम रख सकेंगे? जरा इस बात का भी तो विचार कीजिएँ

दमयन्ती–मैं आपका धर्मप्रेम समझती हूँ और आपमें जितनी जल्दी परिवर्तन आ सकता है, उतना परिवर्तन ये राजधानी में रहने वाले शायद ही कर पायें, क्योंकि यहाँ रहने वालों में से कोई किसी

चीज का नशा करता है, तो किसी को कोई और दुव्यर्सन लगा हुआ है। मैं यह जानती हूँ कि गरीब लोगों के बीच रहने से विशेष उपकार हो सकता है, परन्तु अभी मैं गृहस्थ हूँ और इसमें रहते हुए सर्वकल्याण के मार्ग पर चलने में अपने आपको असमर्थ पाती हूँ। जब तक मैं अपने पतिदेव को सकुशल नहीं देख लूँ, तब तक मैं इस प्रकार की वृत्ति नहीं अपना सकती कि परिवार को छोड़कर मानवमात्र का कल्याण करने के लिए निकल सकूं। ऐसी स्थिति में चाहे तापसपुर में रहूँ या इस नगर में या किसी दूसरे स्थान पर, कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता है। आप मेरी रक्षा कर सकते हैं, आनन्द के साथ मुझे अपने साथ रख सकते हैं, लेकिन आप व्यापारी हैं और व्यापार के निमित्त इधर–उधर घूमते रहते हैं, तो उस स्थिति में आप किधर ही निकल जायें और मेरे पतिदेव और कहीं रह जायें, इसलिए सबसे पहले मेरा कर्तव्य है कि पतिदेव का पता लगाकर गृहस्थावस्था में शांति से रहूँ और उसके बाद अपने जीवन को दूसरी ओर मोड़ूं। मैं राजभवन में रहने के लिए लालायित नहीं हो रही हूँ।

दमयन्ती की बात सुनकर सभी यह जानने के लिए उत्सुक होकर बोले–आपको अपने पतिदेव का पता लगाने का ऐसा कौनसा साधन यहाँ प्राप्त होगा कि जिससे आप राजभवन में रहने का विचार कर रही हैं?

दमयन्ती–मैं यहाँ के आदर–सत्कार से नहीं ललचा रही हूँ, परन्तु मेरे मन में यह विचार आया है कि यहाँ के महाराज ऋतुपर्ण की ओर से एक दानशाला चल रही है, जिसमें दीन–दुःखी गरीबों की जरूरतों को पूरा किया जाता है। महारानी जी की भावना है कि दानशाला की व्यवस्था मैं करूं। इस कार्य को करने से मैं अनेक दीन दुःखी अनाथों को उत्थान का मार्ग भी बता सकूंगी। इसके साथ ही कदाचित् मेरे पतिदेव भी घूमते हुए इधर आ जाते हैं, तो दानशाला में रहने के कारण मैं उनके दर्शन कर सद्भागिनी बन सकूंगी। इसी भावना से मैं अनुमति देने के लिए आपसे निवेदन कर रही हूँ।

दमयन्ती के मनोभावों को सुनकर सभी गद्गद् हो गये। उनका मन तो नहीं मानता था कि सती उनसे विलग हो, लेकिन जब मर्म की बात सुनी, तो वे विवश होकर सोचने लगे कि इनका हित हमारा हित है। मन ही मन धन्य–धन्य कहते हुए वे बोले–हम क्या आज्ञा दें? हमारा सद्भाग्य है कि हम जैसे सामान्य व्यक्तियों को आप सम्मान दे रही हैं। आप धन्य हैं। आपकी भावना पूरी हो। फिर नमस्कार करके दमयन्ती को विदा दी।

दमयन्ती सभी को नमस्कार करके जैसे ही राजभवन में जाने के लिए मुड़ी, तो वे व्यापारी भी भक्तिभाव से उल्लासपूर्वक विदाई देते हुए राजभवन की सीढ़ियों तक साथ आये और एक ओर खड़े होकर ऊँचे हाथ करके शुभाशीर्वाद दिया।

दमयन्ती ने भी हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए राजभवन में प्रवेश किया, तो साथ में आये व्यक्ति शून्य मन से अपने–आप में खोये हुए से अपने विश्राम–स्थान की ओर लौट पड़े। उनके मनों में हर्ष के साथ वियोग–दुःख का विचित्र संमिश्रण हो रहा था।

❖ ❖ ❖

दमयन्ती का अभयदान

संसार का यह नियम है कि इष्ट वस्तु का संयोग मिलने पर मनुष्य अपने मन में आनन्द का अनुभव करने लगता है। उस समय यही दशा महारानी चन्द्रप्रभा की हो रही थी। वे राजभवन के झरोखे में बैठी हुई दमयन्ती के आने की बाट देख रही थीं कि जब वह सती आ जाये, तभी मन को संतोष हो। जैसे ही उन्होंने विशाल जन–समूह के साथ उसे राजभवन की ओर आते देखा, तो हर्ष–विभोर होकर अगवानी के लिए द्वार पर आ पहुँची और जैसे ही दमयन्ती ने देहली पर पैर रखा, तो उसे गले लगा कर बोलीं–आपने मेरा मनोरथ साकार कर दिया है। अब आप इस राजभवन को अपना ही समझें और अज्ञान अन्धकार को हटाती हुई हमें सच्चे मार्ग को बोध करायें।

दमयन्ती–यह आपकी मेहरबानी है। अपनी शक्ति के अनुसार यह कार्य भी करने को तैयार हूँ और साथ–साथ दानशाला में मुख्य रूप से देख–रेख का कार्य भी मुझे सौंप दें, जिससे वहाँ रहकर दीन–दुःखी अनाथ व्यक्तियों की सेवा कर सकूं।

दमयन्ती की बात को सुनकर महारानी ने विचार किया कि इसको अपनी रुचि के अनुरूप कार्य देना ठीक है। इसके दानशाला में रहने से गरीबों की सेवा सुव्यवस्थित रीति से हो सकेगी। वह मन में हर्षित होती हुई बोलीं–आपकी भावना का मैं आदर करती हूँ और विश्वास करती हूँ कि दानशाला में आपके रहने से राज्य की शोभा चौगुनी हो जायेगी।

महाराज ऋतुपर्ण की तरह राजपद पर रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की यह भावना होनी चाहिए कि यह राज्य–सम्पत्ति जनता के हित के लिए है, न कि इन गिने–चुने ऊँचे पदों पर पहुँचने वाले व्यक्तियों के अपव्यय के लिएँ यदि राज्यसत्ता पर पहुँचने वाले व्यक्ति और राज्यकर्मचारी अपव्यय करते हैं, तो यह स्थिति विचारणीय है। विरले व्यक्ति ही सही स्थिति को जानते हैं। आज की दुनिया में तो यहाँ कुछ है और वहाँ कुछ है। इस प्रकार की अंधाधुंध की स्थिति है।

दानशाला में आकर दमयन्ती ने एक दो दिन में सारी परिस्थिति का निरीक्षण किया, तो उसे यह अनुभव हुआ कि दानशाला में काम करने वाले व्यक्ति जो खाद्य–सामग्री लाते हैं, वह सड़ी–गली होती है। जब अनाथ भिखारी लोग अपनी भूख मिटाने के लिए उन वस्तुओं को खाते हैं, तब वे बीमार पड़ जाते हैं। इस दयनीय स्थिति को देखकर उसने विचार किया कि अभी जो कार्य चल रहा है, वह सुव्यवस्थित नहीं है। यहाँ तो मानवता के धरातल पर कार्य होना चाहिएँ उसने आदेश दिया–आज से दानशाला में कोई खराब वस्तु न लायी जाये।

दानशाला में काम करने वालों के बारे में भी दमयन्ती ने हमदर्दी से सोचा कि ये सड़ा–गला अनाज आदि क्यों लाते हैं? इसके पीछे भी कोई न कोई कारण होना चाहिए ? कारण की तलाश करने के लिए उसने कर्मचारियों से एकान्त में पूछा–तुम्हारे परिवार में कितने सदस्य हैं ? उनमें खानेवाले कितने हैं और कमानेवाले कितने हैं ? कितना वेतन मिलता है ? क्या वेतन से घर खर्च चल जाता है ?

कर्मचारी–बहिन! आपसे क्या छिपायें, इतने वेतन से घर–खर्च नहीं चल पाता है।

दमयन्ती–घबराओ नहीं। तुम्हारे घरखर्च के लायक वेतन बढ़ाये देती हूँ, लेकिन काम ईमानदारी से करो। जब भी कोई तकलीफ हो, तो मुझसे कहना।

दमयन्ती के विचारों को सुनकर कर्मचारी प्रभावित हुए और सोचने लगे कि यह मनुष्य के हृदय को पहिचानने वाली देवी है। इसने ठीक तरह से पहचाना है कि हम अपने परिवार का खर्च कैसे चलाते हैं? जब यह हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए तैयार है, तो हमें भी ईमानदारी–पूर्वक व्यवस्थित ढंग से कार्य करना चाहिएँ

दानशाला में जो भी व्यक्ति आता, उसे दमयन्ती सत्कार–सम्मान के साथ भोजन कराती, फटे हाल होते, तो कपड़े देती और साथ ही समझाती कि इस प्रकार कैसे जीवन गुजारोगे ? कब तक ऐसी स्थिति में रहोगे ?

दमयन्ती के समझाने से वे कुछ काम–धन्धा करने का विचार करते, लेकिन साधन न होने से कुछ नहीं कर पाते थे। जब वे अपनी भावना दमयन्ती के सामने रखते, तो वह उनके योग्य काम की व्यवस्था कर देती थी। महारानी से कहकर उनके लिए उद्योग–धन्धे खुलवा दिये, जिससे सैकड़ों व्यक्तियों की भीख मांगने की आदत छूट गयी। जो वास्तव में लूले–लंगड़े अपाहिज थे और किसी भी प्रकार का काम करने से लाचार थे, उनके रहने के लिए झोंपड़ियाँ बनवा कर समय पर भोजन पहुँचाने की व्यवस्था कर दी गयी।

दानशाला के कार्य से निवृत्त होकर दमयन्ती राजभवन में आ जाती और भोजन करने के बाद महिलाओं की बीच आ बैठती। वह अपने अनुभव सुनाती, आचार–विचार में सुधार का उपाय बताती, परिवार में शांति बनाये रखने के लिए समस्याओं का समाधान करती और साथ ही गृहउद्योगों को करने की प्रेरणा भी देती। धर्म का स्वरूप समझाते हुए सम्यग्ज्ञान–दर्शन–चारित्र की प्राप्ति का मार्ग, शांति के स्वरूप की पहिचान, स्त्री और पुरुष के कर्तव्य आदि विषयों के बारे में उन्हें समझाती। इसी प्रकार शिष्ट सभ्य बोलचाल और बर्ताव के बारे में भी उन्हें शिक्षा देती। राजभवन में काम करने वालों

को नौकर, दासी, दास आदि कहने के बदले भाई, बहिन आदि कहने की परम्परा चालू करवायी, जिससे राजभवन से लेकर सारे नगर के जीवन में एक अनोखा और नया परिवर्तन आ गया।

धीरे–धीरे दमयन्ती के गुणों और बर्ताव की प्रशंसा चारों ओर होने लगी कि यह कौन सती आयी है, जिससे राजभवन से लेकर हमारे सारे राज्य में अमन–चैन कर दिया है। जिधर देखो, उधर ही दमयन्ती के नाम की माला फेरी जाने लगी कि इसके आने से हमारा महान् उपकार हुआ है। सभी उसकी जय–जयकार करते हुए हर्ष–विभोर होकर नाचने लगते थे।

दमयन्ती की प्रशंसा सिर्फ सेठ–साहूकार, साधारण जन और गरीब ही नहीं करते थे, किन्तु चोर–डाकू आदि दुर्व्यसनी व्यक्ति भी उनके गुणों को सुन–सुनकर गद्‌गद् हो जाते थे।

इन्हीं दिनों की बात है। राजभवन से चोरी के अपराध में एक व्यक्ति पकड़ा गया और राजा ने दंड देने के लिए उसे फांसी पर लटकाने का हुक्म दे दिया। फांसी का हुक्म सुनते ही वह सोचने लगा कि मैं वर्षों से चोरी करता आ रहा था, उसी का आज यह फल मुझे मिल रहा है।

मौत की सजा पाने वाले व्यक्ति के बारे में यह नियम है कि मरने से पहले उसकी यदि कोई मनोकामना हो, तो उसे सरकार की ओर से पूरा किया जाता है। इस नियम के अनुसार चोर से भी उसकी अन्तिम इच्छा पूछी गयी। सिर पर मौत की तलवार लटकने से उसे तो सब फीका–फीका लग रहा था और वह सोच रहा था कि यदि अब की बार मैं बच जाऊँ, तो फिर कभी चोरी नहीं करूंगा। ऐसा विचार कर उसने नगर के बड़े–बड़े सेठ–साहूकारों को बुलवाने की इच्छा जाहिर की। उनके आने पर उन्हें अपने मन की बात कह सुनायी कि आप लोग मुझे छुड़वा देंगे, तो आगे कभी भी यह पाप नहीं करूंगा।

चोर की बात सुनकर किसी की भी हिम्मत नहीं हुई कि महाराज से इसके लिए कुछ कहा जाये। वे बोले–यह बात हमारे वश की नहीं है। महाराज के ऊपर हम दबाब नहीं डाल सकते।

चोर–कोई अन्य उपाय हो, तो बताइएँ

साहूकार–हाँ, एक उपाय है कि दानशाला में बाहर से आयी हुई एक सती बहिन रहती है, जिसके मन में गरीबों के लिए हमदर्दी है और महाराज व महारानी पर भी उसका प्रभाव है। उसके आने से सारे राज्य में अमन–चैन फैल रहा है। अगर तुम उस बहिन को अपनी बात बताओ और वह इस पर ध्यान दे, तो वह तुमको बचा सकती है।

दूसरे दिन जब सिपाही चोर को फांसी देने के लिए ले जा रहे थे, तो उस समय चोर सोच रहा था कि अगर इस रास्ते पर दानशाला आ जाये और सती के दर्शन हो जायें, तो मैं अपनी फरियाद उसके कानों में भी पहुँचा सकूं। भाग्य से वे सिपाही चोर को लेकर दानशाला के सामने से निकले तो चोर वहाँ बैठी हुई सती को देखकर बहुत ही करुणाजनक वाणी में बोला–देवी! मुझे बचाओ। अब मैं कभी गलत काम नहीं करूंगा।

दमयन्ती इस दीनता–भरी आवाज को सुनकर विचार करने लगी, मालूम होता है कि इसको फांसी पर लटकाने के लिए ले जाया जा रहा है। फांसी लगने पर इस वर्तमान स्थिति के फलस्वरूप इसकी आत्मा इस स्थूल शरीर को छोड़कर अपने सूक्ष्म कार्मण शरीर के साथ अन्य योनि में जाकर न जाने कैसी स्थिति में रहेगी और वहाँ हाय–हाय करती हुई न मालूम किन–किन दुर्गतियों में जायेगी तथा कितने काल तक परिभ्रमण करेगी ? यह तो अनन्त ज्ञानी ही जान सकते हैं। कदाचित् इसी तरह मेरी वर्तमान पर्याय भी मृत्यु के मुख में होती, तो मुझे भी न मालूम कितना दुःख होता, मैं अपने अनुभव से सोचती हूँ कि बेहद दुःख होता। मुझे इसके दुःख को दूर करना है,

क्योंकि वीतराग भगवान की वाणी है कि सब आत्माएँ अपनी आत्मा के तुल्य हैं। इसलिए मुझे इस दुःखी को बचाने का प्रयत्न करना चाहिएँ उसने सिपाहियों से कहा–ठहरो इसको फांसी देने का क्या कारण है?

सिपाही–बहिन! यह बहुत बड़ा पापी है, देशद्रोही है। इसने कितनी ही चोरियाँ की हैं, डाके डाले हैं और अत्याचार किये हैं। यह अन्याय का पुतला है। महाराज इसको दंड देकर दूसरों को शिक्षा देना चाहते हैं।

दमयन्ती–इसने अभी क्या अन्याय किया है?

सिपाही–यह राजभवन में चोरी करते हुए पकड़ा गया है। दमयन्ती ने सिपाहियों की बात सुनकर चोर की तरफ देखा और कहा कि तुम जीवन को तो बचाना चाहते हो, लेकिन तुमने जो अन्याय किये हैं, उनका फल तो भोगना ही पड़ेगा।

चोर–देवी ! मैंने इस जीवन में काफी अन्याय किये हैं, लेकिन अब मैं आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब अगर मेरा जीवन बचता है, तो अन्याय को छोड़कर अपने जीवन को सन्मार्ग पर लगाऊँगाँ आप मेरे पर दया कीजिये।

दमयन्ती ने चोर की भावना को समझकर विचार किया कि जब यह पश्चात्ताप करके अपने किये हुए पापों को हमेशा के लिए छोड़ना चाहता है, तो अब इसको छोड़ देना चाहिए और सिपाहियों से कहा कि इसे छोड़ दो।

सिपाही–बहिन ! आपके कहने से यदि हम इसको छोड़ दते हैं, तो राजाज्ञा भंग होती है और उसके साथ ही हमारा जीवन भी खतरे में पड़ जाता है। हम चोर को मदद देने वाले माने जायेंगे, देशद्रोही कहलायेंगे और ऐसी हालत में हम भी सजा के भागी बनते हैं। इसलिए हम इसे नहीं छोड़ सकते। आप महाराज से कहकर इसे छुड़वाइएँ हमें तो आज्ञा का पालन करना है।

दमयन्ती ने सिपाहियों की बात सुनकर विचार किया कि इनका भी कहना ठीक है, लेकिन जब पाप करने वाला व्यक्ति प्रायश्चित्त करके अपने पापों से दूर हटना चाहता है, तो ऐसी अवस्था में उसका रक्षण करना मेरा फर्ज है। ऐसा सोचकर उसने अपनी आत्मिक शक्ति का ऐसा प्रयोग किया कि जिससे चोर के बंधन खुल गये और सिपाहियों के पैर जहाँ के तहाँ चिपक गये।

इस आश्यर्चकारी घटना को देखकर सैकड़ों व्यक्ति दानशाला के सामने इकट्ठे हो गये। राजा ऋतुपर्ण को भी जब इस घटना की सूचना मिली, तो वे भी दानशाला के सामने आ पहुँचे और सती से बोले–आपने यह क्या चमत्कार किया?

दमयन्ती–मैंने ठीक ही किया है। यह अपराध करना छोड़ रहा है, तो इसको फांसी की सजा क्यों दी जा रही है?

ऋतुपर्ण–भविष्य में पाप करेगा, तो.......

दमयन्ती–मुझे इसके चेहरे के भावों को देखते हुए ऐसा मालूम हो रहा है कि इसने अपने किये हुए पापों का प्रायश्चित्त शुद्ध भाव से किया है। जो व्यक्ति शुद्ध भावों से प्रायश्चित्त कर लेता है, वह भविष्य में पाप करे, ऐसा संभव नहीं लगता। अगर फिर भी इसने भविष्य में पाप किया, तो आप इसको दंड दे सकते हैं। परन्तु इस समय जब यह प्रतिज्ञा कर रहा है, तो इसको मौका देना चाहिएँ

राजा ऋतुपर्ण सती की बात को न टाल सके और चोर को रिहा कर दिया। रिहा होते ही वह दमयन्ती के चरणों में नमस्कार कर के बोला–अब आपके प्रभाव से मेरा पुनर्जन्म हुआ है। आप जगज्जननी हैं, जगदम्बा हैं, मैं आपका उपकार नहीं भूलूंगा। मैं भूखा रह लूंगा, परन्तु चोरी कभी नहीं करूंगा और न अन्याय ही करूंगा।

चोर के बंधनमुक्त होने की घटना को लेकर सारे नगर में चर्चा होने लगी कि यह कोई महान सती है। इसमें कितना तेज है कि महाराज को भी इसकी बात माननी पड़ी। ऐसी महान सती को धन्य है। ❖ ❖ ❖

पिंगलक की प्रवज्या

जिस चोर को बंधनमुक्त किया गया था, उसका नाम पिंगलक था। उसके जीवन में अब इतना परिवर्तन आ गया था कि वह अपने आपको सुधारने और सत्शिक्षा लेने के लिए प्रतिदिन सती के दर्शन करने के लिए आने लगा। वह स्वयं अपने को सुधारने के साथ–साथ अपने परिवार में से भी दुर्गुणों को दूर करने के लिए प्रयत्नशीन हो गया। दमयन्ती भी उसे मनुष्य–जीवन के कर्तव्य के बारे में शिक्षा देती। किसी एक दिन जब चोर दर्शन करने और उपदेश सुनने आया, तो दमयन्ती ने आशीर्वाद देकर पूछा–तुम में यह चोरी करने की आदत कैसे आयी? तुम कहाँ के रहने वाले हो और चोरी करने का कारण क्या है?

दमयन्ती के ऐसा पूछने पर चोर बोला–मैं तापसपुर का रहने वाला हूँ।

दमयन्ती–कौन–सा तापसपुर ?

पिंगलक–जिसे आप जानती हैं, उसी तापसपुर का रहने वाला हूँ।

दमयन्ती–अरे! वहाँ रहने पर भी ये कुसंस्कार कैसे पड़ गये?

पिंगलक–ऐसे पड़ गये कि मुझे सुसंस्कारों से दूर रखने वाले मेरे साथी थे। माता–पिता ने भी शिक्षा नहीं दी, जिससे ऐसी आदतें पड़ गयी कि मेरा चरित्र बिगड़ गया और मैं चोर बनकर यहाँ आ पहुँचा। दिन में तो मैं सहूकार बनकर रहता था और रात में चोरी करता था। उन्हीं दिनों मन में विचार पैदा हुआ कि ज्यादा से ज्यादा

सम्पत्ति इकट्ठी करके शानशौकत से रहूँ। विचार के अनुसार मैं बड़ी–बड़ी चोरियाँ करने लगा, लेकिन जैसे–जैसे सम्पत्ति बढ़ने लगी, तो मन में ज्यादा अशांति बढ़ गयी। दिनों–दिन लोभ बढ़ता गया कि इतनी सम्पत्ति तो हो गयी, अब इतनी और बढ़ जाये। इस पर सोचा कि धंधा तो चल ही रहा है, फिर छोटे–छोटे घरों में चोरी करने की बजाय बड़े–बड़े रईसों के घर में धावा मारूं। महाराज के भंडार में तो बहुत धन है, हीरे–जवाहरातों की कमी नहीं है। अगर रानी या राजकुमारी के जेवर हाथ आ जायें, तो बड़ा धनवान बन सकता हूँ।

इसी विचार से एक दिन रात्रि को राजभवन में घुसा और जैसे ही जेवरों की पेटी उठाकर भागा, तो पकड़ा गया। इस पर मेरी सब चोरियों को भेद खुल गया। मैं अन्तरात्मा की साक्षी–पूर्वक यह स्वीकार करता हूँ कि मैं भयंकर चोर–डाकू बन चुका था। मैंने न जाने कितने आदमियों की हत्या की। जब एक व्यक्ति को मारने से सजा मिलती है, तो सैकड़ों को मारने पर फांसी मिलनी ही चाहिए थी। महाराज ने मेरे लिए जो फांसी का दण्ड दिया था, वह बिल्कुल ठीक था। जब मैं फांसी के लिए ले जाया जा रहा था, तो मैंने आपकी ओर देखा। जब आपकी ओर देखा, तो मेरे अन्तर् की आवाज आपकी आत्मा से जुड़ी और आपने मुझे बचा लिया। अब मैं शांति का अनुभव कर रहा हूँ और मैंने निश्चय कर लिया कि मजदूरी करके पेट भर लूंगा और आपके चरणों में रहकर शांति प्राप्त करूंगा। आप की सत्शिक्षा से अभी मैंने पाप कार्यों से मुक्ति पायी है। अब आप यह समझाइए कि विकट से विकट स्थिति आने पर भी अपने जीवन को शांत कैसे रख सकूं? वह मार्ग बताइए, जिससे अपना आँतरिक पुरुषार्थ जगा सकूं?

पिंगलक की बात को सुनकर दमयन्ती ने सोचा कि अब इसकी आत्मा अन्दर से जागृत हो चुकी है। अतः अब इसको सही मार्ग पर लगा देना चाहिएँ ऐसा सोचकर वह बोली–भाई ! तुम मेरा उपकार मान रहे हो, लेकिन यह मेरा नहीं, राजा का उपकार है।

पिंगलक–राजा का उपकार तो है ही, परन्तु आप का उपकार उससे भी बढ़कर है। अब आगे के लिए अपनी आत्मा का उत्थान कैसे कर सकूं, इसका भी रास्ता आप ही बताइएँ

दमयन्ती–मजदूरी करने के बाद समय निकाल कर यहाँ आया करो। दानशाला में जो शिक्षा देने का काम चलता है, उसका तुम भी लाभ उठाओ।

दमयन्ती की बात मानकर पिंगलक प्रतिदिन शिक्षा प्राप्त करने के लिए दानशाला में आने लगा। दमयन्ती ने उसे संसार और मुक्ति के कारणों की जानकारी देते हुए बताया कि भौतिक पदार्थों पर विश्वास, उनका ज्ञान और उनकी ही प्राप्ति के लिए प्रवृत्ति करना, संसार है तथा सत्–चित्–आनन्द–घन रूप आत्मा के सही स्वरूप को समझना, सही श्रद्धा करना एवं श्रद्धा व समझ के अनुसार सही आचरण ही मुक्ति का मार्ग है। यही शांति को प्राप्त करने का उपाय है।

दमयन्ती की शिक्षाओं को सुनकर कई भव्य आत्माएँ गद्‌गद् हो जाती थीं और अपने जीवन को संवारने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करती थीं, लेकिन पिंगलक तो इतना प्रभावित हो गया कि मन में कुछ निश्चय–सा करते हुए वह एक दिन बोला–मैं अपने जीवन का आमूलचूल परिवर्तन करके स्थाई शांति–प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होना चाहता हूँ।

दमयन्ती–भाई! तुम शांति चाहते हो, तो प्रत्येक जीव को शांति देने की कोशिश करो। जीवों के साथ शत्रुता छोड़ दो, द्वेष–वृत्ति मत रखो और हिंसा मत करो। गृहस्थावस्था में लाचारी से जो हिंसा होती है, तो उसमें भी यही अनुभव करो कि मेरी आत्मा जिस मात्र में हिंसा से लिप्त हो रही है, उतनी ही संसार की वृद्धि हो रही है, जिससे मैं पूर्ण शांति का अनुभव नहीं कर पा रहा हूँ। मेरा वह दिन धन्य होगा, जब मैं गृहस्थावस्था में रहने के कारण लाचारी से होने वाली हिंसा का त्याग करके संसार के स्वरूप को सही रूप में

समझकर और मुक्ति के स्वरूप को सच्चे रूप से जानकर वैसा आचरण करूंगा। तभी मैं स्थाई शांति प्राप्त कर सकूंगा।

पिंगलक बोला–देवी! आपकी वाणी सुनकर मेरा मन प्रफुल्लित हो रहा है और उस वाणी से मैं शांति का अनुभव कर रहा हूँ। मेरी अन्तरात्मा से आवाज आ रही है कि मैं जल्दी–से–जल्दी पूर्ण शांति प्राप्त करने के मार्ग पर चल पडूं। मुझे इस गृहस्थावस्था का त्याग करना है। इसका त्याग करने के लिए इसलिए उत्सुक हूँ कि मैं प्राणीमात्र को अपने परिवार का सदस्य बनाऊँ। जब मैं किसी जीव की हिंसा करूंगा नहीं, कराऊँगा नहीं और करते हुए को भला समझूंगा नहीं, तभी मैं स्थायी शांति प्राप्त कर सकूंगा।

दमयन्ती–तुम्हारी यह भावना पवित्र है, परन्तु यह ध्यान में रहे कि मैं स्वयं गृहस्थावस्था में रह रही हूँ। मेरी भी भावना है कि पूर्ण शांति के मार्ग पर अग्रसर होऊँ, परन्तु अभी इस मार्ग पर चलने में मेरे सामने कुछ रुकावटें हैं। यदि तुम संसार का त्याग करना चाहते हो, तो उसके लिए मैंने प्रारंभिक ज्ञान करा ही दिया है और पूर्ण रूप से शांति के मार्ग को समझाने, उस पर अग्रसर कराने में समर्थ तो सर्वस्व का त्याग करके जगत के समस्त प्राणियों के साथ आत्मभावना रखने वाले निर्ग्रन्थ त्यागी महात्मा ही होते हैं। कभी संभव हुआ, तो मैं तुम्हें उनके पास ले जाकर प्रेरणा कर सकती हूँ।

प्रकृति का कुछ ऐसा नियम है कि जो जैसी भावना रखता है, उसे उसके अनुरूप संयोग मिल जाते हैं। दमयन्ती बहुत दिनों से सोच रही थी कि पवित्र महात्माओं का संयोग मिले, तो उनकी वाणी सुनकर मैं अपने जीवन को पवित्र बनाऊँ। यह जिज्ञासु व्यक्ति पूर्ण शांति के राजमार्ग पर अग्रसर होना चाहता है, तो इसकी भी भावना सफल हो। अकस्मात् कुछ मुनिराजों का नगर में पदार्पण हुआ। इसको देखकर दमयन्ती ने पिंगलक से कहा–तुम्हारी भाग्यरेखा प्रबल है, जिससे कि तुम्हें यह शुभ संयोग उपलब्ध हुआ है।

पिंगलक अपनी मन–चाही बात को सुनकर प्रसन्न हो गया। वह जल्दी से जल्दी मुनिराजों की सेवा में पहुँचने के लिए उत्सुक हो रहा था। अतः एक दिन पिंगलक को लेकर दमयन्ती मुनिराजों की सेवा में पहुंची।

उपदेश सुनने के बाद जब अन्य श्रोता चले गये, तो मुनिराजों की सेवा में दमयन्ती ने निवेदन किया–भगवन् ! यह व्यक्ति आपकी सेवा में रहने के लिए तत्पर हो रहा है। परन्तु आप इसका वृत्तान्त सुनेंगे, तो आपको यह अत्यन्त पापिष्ठ प्रतीत होगा। आलोचना करने के लिए यह स्वयं अपनी पूरी कहानी सुनायेगा, लेकिन अब इसके जीवन में आमूलचूल परिवर्तन आ गया है और इसका उद्धार आपकी संगति में रहने से हो सकता है। संगति के प्रभाव से पापी से पापी व्यक्ति धर्मात्मा बन सकता है और धर्मात्मा भी पापी बन सकता है। नीचकुल में जन्म लेने वाले यदि अच्छे संस्कारों में रह जाते हैं, तो धर्मी बन जाते हैं और धर्मी परिवार में जन्म लेने वाले भी यदि कुसंस्कारों में पड़ जायें, तो बिगड़ जाते हैं। आप ज्ञानी हैं। मैं और विशेष क्या कहूँ ? आप दिव्य दृष्टि से इसका अवलोकन कीजिए और हितबुद्धि से देखकर यदि आपको योग्य लगे कि यह शांति की उपासना में रह सकता है, तो वैसा कीजिएँ

दमयन्ती की बात सुनकर मुनिराज गौर से पिंगलक की ओर देखने लगे। जो व्यक्ति आँतरिक अनुभव से अन्य व्यक्तियों को पहिचानने की क्षमता रखता है, वह एक ही नजर में अथवा कुछ ही क्षणों में व्यक्ति की पहिचान कर लेता है। भले ही अभ्यास के तौर पर कुछ समय के लिए अपने पास रखे, परन्तु परीक्षा करने में विलम्ब नहीं लगायेगा। जिसका अनुभव तीव्र होता है, वे इस स्थिति को क्षण भर में परख लेते हैं कि भूत में इसका जीवन कैसा था और भविष्य में कैसा बन सकता है। फिर चाहे वे इस बात को अपने मुँह से कहें या न कहें।

पिंगलक की ओर दृष्टिपात करके कुछ निर्णय–सा करते हुए मुनिराज बोले–भाई! तुम अपनी आँतरिक अशांति को छोड़ो और जब तक संसार का स्वरूप क्या है, आत्मा और मोक्ष का स्वरूप क्या है, अशांति का कारण क्या है और शांति कैसे प्राप्त की जा सकती है, कौन–सा आचरण तुम्हारे लिए शांतिप्रद है और कौन–सा अशांतिप्रद, इन बातों को जब तक ठीक तरह से नहीं समझोगे, तब तक तुमको शांति का मार्ग नहीं मिलेगा। अतः शांति के मार्ग को समझकर उस पर चल सकोगे या नहीं, इसका विचार कर लो।

मुनिराज की बात सुनकर पिंगलक गद्गद् स्वर में बोला–आप सचमुच में पतित–पावन हैं, आप मुझे पवित्र बना सकते हैं। मैं अपने जीवन का सुधार करना चाहता हूँ। इत्यादि कहते हुए पूर्व कृत्यों के स्मरण से दुःखित हो जाने के कारण उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

मुनिराज–घबराओ नहीं। ठोकर तो बड़े–बड़े भी खा जाते हैं। जीवन को विकास की ओर बढ़ाओ। इस तरह भली प्रकार से सांत्वना देते हुए मुनिराज ने पिंगलक की पूरी परीक्षा कर ली और फिर पूर्ण शांति के मार्ग पर आरूढ़ करने के लिए उसे श्रमणधर्म अंगीकार कराकर उन्होंने वहाँ से विहार कर दिया।

कभी–कभी मनुष्य के मस्तिष्क में कल्पना आती है कि साधु हो जाने के बाद भी शिष्य–मोह तो बना ही रहता है, इसीलिए सर्वस्व के त्यागी मुनिराज हर किस को मूंडते रहते हैं, जैसे कि यहाँ चोर को मूंड लिया, तो क्या यह लोभी की मात्र नहीं है? परन्तु ऐसी परिकल्पना करने वालों को सोचना यह है कि मुनिराज अपनी लालसा के लिए किसी को नहीं मूंडते हैं। वे तो सर्वस्व के त्यागी है, महाशांति के पथिक हैं और दूसरों को शांति का पथ बता रहे हैं। वे शांति की प्राप्ति में निमित्त बनते हैं और सोचते हैं कि यह सन्मार्ग की ओर जाने को उत्सुक है और मेरे निमित्त से इसकी आत्मा में शांति का संचार हो सकता है। यह आत्मिक शांति प्राप्त कर सकता है। ऐसा सोचकर उसे सहयोग देने के लिए वे उसे दीक्षित करते हैं। ❖ ❖ ❖

कुंडिनपुर से ब्राह्मण का आगमन

दानशाला के द्वारा दमयन्ती दूसरों को शांति पहुँचाते हुए स्वयं भी शांति का अनुभव कर रही थी और राजा ऋतुपर्ण के राज्य में एक नयी चेतना का संचार हो रहा था। प्रजा अनोखे उत्साह का अनुभव करने के साथ–साथ धन–वैभव की वृद्धि होने से सती का मंगलगान करती थी।

इन्हीं दिनों की बात है कि एक ब्राह्मण देश–विदेश में घूमता हुआ राजा ऋतुपर्ण के राजभवन पर आया और द्वारपाल से प्रवेश करने की आज्ञा मांगी। अन्दर जाकर ब्राह्मण ने महाराज ऋतुपर्ण का राजोचित अभिवादन करने के बाद अपना स्थान ग्रहण किया, तो ऋतुपर्ण ने पूछा–आपका आगमन कहाँ से हुआ है ?

महाराज के प्रश्न को सुनकर ब्राह्मण ने सोचा कि मुझे अभी अपने प्रयोजन की जानकारी देना उचित नहीं है और जिस कार्य के लिए मैं यहाँ आया हूँ, यदि वह पूरा हो जाता है, तो अभी तक किया गया परिश्रम सफल हो जायेगा।

वह बोला–मैं कुंडिनपुर से रवाना होकर देश–विदेश में घूमता हुआ यहाँ आया हूँ।

ऋतुपर्ण–महाराज भीमरथ आदि सब प्रसन्न हैं ?

ब्राह्मण–हाँ राजन्! प्रसन्न तो हैं ही, परन्तु कुछ समस्याएँ ऐसी होती हैं, जो सबके सामने नहीं बतायी जा सकतीं। यदि आपकी आज्ञा हो, तो अंतःपुर में जाकर महारानी जी से भी मुलाकात कर लूं।

ऋतुपर्ण–आप अंतःपुर में पधार सकते हैं।

महाराज ऋतुपर्ण की आज्ञा लेकर ब्राह्मण अंतःपुर में पहुँचा और महारानी जी को अपना परिचय देते हुए बोला–मैं कुंडिनपुर से आया हूँ।

महारानी चन्द्रयशा ने यथोचित आदर के साथ ब्राह्मण को बैठाने के बाद पूछा–आप कुंडिनपुर से पधारे हैं। वहाँ मेरी बहिन, बहनोई जी आनन्द–मंगल में तो हैं ?

सब आनन्द–मंगल जैसा ही है।

यहाँ आपके आने का प्रयोजन क्या है?

आपको तो समाचार मालूम ही होंगे।

मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं है और इधर बहुत दिनों से कोई समाचार भी नहीं आये हैं।

ब्राह्मण–नल और दमयन्ती के बारे में तो आपने समाचार सुने ही होंगे।

चन्द्रयशा–मैंने दमयन्ती के बारे में कोई–समाचार नहीं सुना है। मैंने उसको बचपन में देखा था। वह बड़ी अच्छी धार्मिक आचार–विचार की बातें करती थी और वैसा ही उसका बर्ताव था। जब भी उसकी याद आती है, तो गद्‌गद्‌ हो जाती हूँ। वह कुशल तो है?

ब्राह्मण–महारानी जी आपने दमयन्ती के बारे में जो कुछ कहा, वह वैसी ही है। महाराज नल के साथ उसका विवाह भी हो गया था। वे भी बहुत प्रतिष्ठित और गुणवान थे। किन्तु. . . . . . .

चन्द्रयशा–आप किन्तु–परन्तु छोड़कर असली बात स्पष्ट रूप से कहिएँ

ब्राह्मण–आपको सुनकर दुःख होगा। इसीलिए मैंने आपके सामने कुछ विशेष नहीं कहा है।

चन्द्रयशा–नहीं, नहीं। जो बात हो, उसे बताइएँ

ब्राह्मण–क्या बताऊँ ? महाराज नल जब विवाह करके अपनी राजधानी पहुँचे और राज्य का संचालन सुचारू रूप से करने लगे, तो उनके प्रभाव से धन–जन की वृद्धि होने के साथ–साथ सबको आनन्द हो रहा था, किन्तु कुछ समय के बाद महाराज कुसंगति में पड़ गये।

चन्द्रयशा–इतने बुद्धिमान होने पर भी कुसंगति में कैसे पड़ गये?

ब्राह्मण–महारानी जी! वे ऐसे व्यक्ति के साथ रहने लगे, जो स्वार्थी था, जिसकी भक्ति कृत्रिम थी। वह मन में कुछ सोचता था, वाणी से कुछ कहता था और व्यवहार कुछ दूसरा ही करता था। लेकिन महाराज नल सरल, भद्र स्वभाववाले थे, जिससे वे उसकी हरकतों को समझ नहीं पाये और नशा आदि कुव्यसनों का सेवन करने लगे।

चन्द्रयशा–तो वहाँ व्यसनों को छुड़वाने वाला कोई नहीं मिला?

ब्राह्मण–दमयन्ती ने भरसक कोशिश की, परन्तु सुधरने की बजाय कुसंगति में और अधिक फंसते गये, जिससे जुए का व्यसन और लग गया।

चन्द्रयशा–तो क्या वे जुआ भी खेलने लगे थे?

ब्राह्मण–हाँ! और जुआ भी ऐसा खेला कि खेलते–खेलते सारा राज्य ही हार गये। इतनी दयनीय स्थिति हो गयी कि महाराज नल को दमयन्ती के साथ वन में जाना पड़ा।

ब्राह्मण की बात सुनकर महारानी को अत्यन्त दुःख हुआ कि मेरी सुकुमार दमयन्ती संकट में फंस गयी। यह तो उस पर आफत का पहाड़ टूट पड़ा है। दुःख का वेग इतना बढ़ा कि वह मूर्छित हो गयी। अपनी स्वामिनी को मूर्छित देखकर दासियाँ घबरा गयीं कि यह

कौन दुष्ट आया है और ऐसा कौन–सा जादू कर दिया कि जिससे वे बेहोश हो गयीं। घबराहट के मारे वे महाराज को खबर देने के लिए दौड़ पड़ीं और उनके पास जाकर समाचार सुनाया कि एक बूढ़ा आया है, जिसने बात करते–करते महारानी जी को मूर्छित कर दिया है।

ऋतुपर्ण–कौन–सा वृद्ध आया है?

दासियाँ–वही कुंडिनपुर वाला।

दासियों के मुँह से महारानी के मूर्छित होने के समाचार सुनकर महाराज ऋतुपर्ण अंतःपुर में आये और देखा कि महारानी मूर्छित पड़ी हैं। इस स्थिति को देखकर ऋतुपर्ण ने ब्राह्मण से पूछा–आपने ऐसी कौन–सी बात कह दी, जिससे ये मूर्छित हो गयीं ?

ब्राह्मण–राजन्! मैं नल–दमयन्ती की खोज करने निकला हूँ और उनके बारे में जब महारानी जी ने सारी बात सुनी, तो सुनकर अत्यन्त दुःखित हो गयी और दुःख के वेग में उन्हें मूर्छा आ गयी। पहले महारानी को सचेत करने का उपाय कीजिए, बाद में पूरी बात सुनाऊँगाँ

उपचार करने से जब महारानी होश में आयीं, तो हा दमयन्ती! नल तू कैसा दुष्ट निकला कि मेरी भानजी को संकट में डाल दिया – आदि कहते हुए वे पुनः रोने लगीं। इन शब्दों को सुनकर ऋतुपर्ण ने महारानी के मूर्छित होने के कारण को समझ लिया और सांत्वना देते हुए कहा–इस प्रकार मूर्छित हो जाने से क्या दमयन्ती मिल जायेगी? नल दमयन्ती का पता लगाने का उपाय करेंगे। देश–देश में अपने विश्वस्त हितैषी व्यक्तियों को भेजकर उनका पता लगायेंगे, लेकिन घबराने से तो कोई काम होने वाला नहीं है।

स्वस्थ हो जाने के बाद महारानी और महाराज ऋतुपर्ण आपस में दमयन्ती के बारे में बातचीत करने लगे और परिस्थिति को ध्यान में रखता हुआ ब्राह्मण भी राजभवन से बाहर निकल कर नगर की ओर चल दिया।

नगर निवासी अपने–अपने कार्यों में लगे हुए थे। उनके चेहरों पर शांति और व्यवहार में शिष्टता आदि को देखकर ब्राह्मण को बहुत ही प्रसन्नता हुई। राजमार्गों से घूमता–घामता और विशाल भवनों की शोभा देखता हुआ वह नगर के बीच में बने एक बगीचे में आया और वहीं पर एक ओर लोगों की बातचीत सुनने के लिए बैठ गया।

बैठे–बैठे उसने लोगों के मुख से सुना कि यहाँ एक पवित्र सती नारी के आने से प्रजा सुख–शांति का अनुभव कर रही है। उसने अपने प्रताप और उपदेश से दुष्ट व्यक्तियों का हृदय–परिवर्तन कर उन्हें सन्मार्ग पर लगा दिया है। उसने राज्य की ओर से चलने वाली दानशाला की ऐसी सुन्दर व्यवस्था कर दी है कि कोई भी दीन–दुःखी अपने को अनाथ नहीं समझता, परन्तु उसने आज तक भी अपना पता–ठिकाना नहीं बताया है कि वह कहाँ से आयी है और उसके माता–पिता आदि का नाम क्या है?

लोगों के मुँह से इन बातों को सुनकर ब्राह्मण भी आश्चर्य में पड़ गया। यकायक उनके मन में विचार आया कि कहीं यह दमयन्ती ही न हो। कुछ विशेष जानकारी करके नगर में घूमता हुआ वह भोजन के समय दानशाला में आ पहुँचा।

जितने भी व्यक्ति भोजन करने के समय दानशाला में आते थे, तो दमयन्ती स्वयं उन्हें भोजन परोसती थी। जैसे ही वह ब्राह्मण के लिए भोजन लेकर आयी, तो वह इतना हर्ष–विभोर हो उठा कि भोजन करना ही भूल गया और प्रसन्नता में झूमते हुए एकाएक बोल उठा–अहा! आज कैसा शुभ दिन आया कि इतने दिनों के परिश्रम के बाद मैंने तुम्हें देख लिया है, मेरी मेहनत सफल हो गयी है, लोग तुम्हें सारे भू–मण्डल में खोजते फिर रहे हैं, परन्तु किसी को तुम्हारा पता नहीं लगा। आज मैंने तुम्हें खोज लिया है। मुझसे बढ़कर भाग्यवान और कौन होगा? आदि कहते–कहते वह नाचने लगा।

ब्राह्मण की इस स्थिति को देखकर भोजन करने के लिए बैठे

हुए अन्य व्यक्ति भी आश्चर्यचकित हो गये कि यह क्या बात कह रहा है? यह कहीं पागल तो नहीं हो गया है? धीरे–धीरे राजभवन और नगर में यह बात फैल गयी कि दानशाला में एक ब्राह्मण 'मुझसे बढ़कर दूसरा कौन भाग्यवान होगा, मैंने तुम्हें खोज लिया है' आदि कहता हुआ नाच रहा है। इस दृश्य को देखने के लिए सैकड़ों नगरवासी और स्वयं महाराज ऋतुपर्ण महारानी चंद्रयशा के साथ दानशाला में आ पहुँचे।

राजा और रानी को देखकर दमयन्ती की ओर उंगली से इशारा करके ब्राह्मण बड़े हर्ष के साथ बोल उठा–महारानी जी! आपकी जय हो हमारे मनोरथ आज सफल हो गये हैं। दमयन्ती तो आपके यहाँ ही है।

ब्राह्मण की बात सुनते ही विह्वल महारानी जी के चेहरे पर वात्सल्य की लहर छा गयी। शोक का वातावरण आनन्द में बदल गया। अभी तक जिन आँखों से विषाद के आँसू टपक रहे थे, उनमें से अब आनन्द के मोती बरसने लगे। दमयन्ती को अपनी छाती से चिपकाकर और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए महारानी बोलीं–हाय! मैं बड़ी अभागिन हूँ, जो कि इतने दिन तक यहाँ रहने पर भी तुम्हें पहिचान नहीं सकी। बेटी तुमने मुझे धोखा दिया, तुम्हें किस बात की लज्जा थी, जो तुम अपने को आज तक छिपाये रही। इन विप्रवर का भला हो। इसके बाद दमयन्ती को साथ लेकर महारानी दानशाला से बाहर आ गयी।

दानशाला में रहने वाली पवित्र देवी को महारानी के गले लगते देख दर्शक सोचने लगे कि यह कोई अनाथ कन्या नहीं है। वे हकीकत जानने के लिए अधीर हो गये।

महारानी चन्द्रयशा ने जनता की जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा–यह हमारी बहिन की लड़की है। इसे कोई साधारण नारी न समझें। इसमें अपूर्व शक्ति रही हुई है, जिसका यहाँ रहते हुए इसने

कभी प्रदर्शन नहीं किया। इसे मैं बचपन से जानती हूँ। इसमें इतनी शक्ति है कि यदि चाहे, तो अंगुली को ललाट पर फेर कर सूर्य जैसा तेज प्रकाश पैदा कर सकती है। इसी प्रकार की अन्य अलौकिक शक्तियाँ भी इसके पास हैं। इसने अपनी उन शक्तियों को धैर्य के साथ छिपाये रखा। इस सती का जीवन आदर्श है और वह आदर्श प्रेरणाप्रद है। यदि इसके जीवन से शिक्षा लेकर आप अपने जीवन का निर्माण करें, तो आपका जीवन मंगलमय होगा।

अब हम आपस में कुछ निजी घरेलू बातें करना चाहते हैं। इसलिए आशा है कि आप लोग एकान्त का मौका देंगे।

महारानी के संकेत को समझकर दर्शक दूर हट गये और दमयन्ती को साथ लेकर महारानी दानशाला के अन्दर एकान्त में चली गयी। एकान्त में पहुँचकर महारानी ने कुछ इधर–उधर की बातें करने के बाद दमयन्ती से पूछा–बेटी! जो कुछ हुआ, सो हो गया। मुझसे सब बातों को छिपाते हुए जहाँ से तुम गुप्तवास में रहीं, वह तुम्हारी आँतरिक शक्ति की प्रबलता के कारण ही सम्भव हुआ है। लेकिन आखिर विप्रवर ने भी अपने प्रयत्न से तुम्हें खोज ही लिया। इसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देती हूँ। उन्होंने जो बातें बतायी हैं, उनको सुनकर मैं जानना चाहती हूँ कि पतिदेव ने तुमको त्यागा है या तुमने ही पतिदेव को छोड़ा है। इस बात को मैं सबके सामने नहीं पूछ सकती थी, इसीलिए यहाँ अकेले में आयी हूँ। यदि पतिदेव ने तुमको त्यागा, तो कोई बात नहीं, अगर तुमने छोड़ा हो, तो यह नारी जाति के लिए योग्य नहीं है। पुरुष और स्त्री दोनों को पुरुषार्थ की दृष्टि से, धर्म की दृष्टि से, जीवन–विकास की दृष्टि से समान अधिकार हैं, लेकिन शारीरिक क्षमता की दृष्टि से समानता नहीं है। नारी बलात्कार से बच नहीं सकती है, जबकि पुरुष बच सकता है। यह विधि–विधान किसी दूसरे का बनाया हुआ नहीं है, स्वयं प्रकृति से बना हुआ है। यह सब पूर्वजन्म के पुरुषार्थ का परिणाम है कि एक आत्मा को नारी का और दूसरे को पुरुष का तन प्राप्त होता है। अगर

पुरुष नारी को छोड़कर जाता है, तो वह अपने कर्तव्य से विमुख होता है, फिर भी नारी को तो अपने कर्तव्य पर आरूढ़ रहना ही चाहिएँ इसी में उसका गौरव है। इसीलिए नारी होने के नाते मैं फिर तुमसे पूछना चाहती हूँ कि यदि तुमने पतिदेव को छोड़ा है, तो तुम्हारा यह कार्य योग्य नहीं है। मैं यहाँ तक कहती हूँ कि बेटी! पतिव्रता नारी गृहस्थावस्था में रहती हुई पति के साथ ऐसा सम्बन्ध स्थापित करती है, जैसा मछली और पानी का होता है। यदि मछली को पानी से अलग कर दिया जाये, तो थोड़े समय में ही वह तड़फ–तड़फ कर प्राण दे देती है, वह जिन्दा नहीं रह सकती। यही स्थिति पतिव्रता नारी की है।

अपनी मौसी की भावुकता से मिश्रित रोष–भरी बातों को सुनकर कुछ देर मौन रहने के बाद दमयन्ती मधुर स्वर में बोली–मौसी जी ! यह आप क्या कह रही हैं, क्या मेरे ऊपर विश्वास नहीं है ? शायद कुछ स्त्रियाँ ऐसी निकल सकती हैं, जो पति को छोड़ दें, परन्तु आपकी कुल–परम्परा में जन्म लेने वाली नारियाँ तो प्राणों को त्याग देंगी, किन्तु वे कर्तव्य से विमुख नहीं हो सकतीं। मैंने कष्ट और संकट के कारण पति को नहीं छोड़ा है और न मैं ऐसा विचार ही कर सकती हूँ। पति ने ही मुझे छोड़ा है। मुझे छोड़कर वे गये अवश्य हैं, परन्तु फिर भी उस स्थिति में कर्तव्य का निर्देश देकर गये हैं।

चन्द्रयशा–क्या नल महाराज ने तुमको छोड़ा है? वे पुरुष हैं ! क्या उन्होंने इस प्रकार वन में अपनी धर्मपत्नी को बिना किसी के सहारे छोड़कर पुरुषत्व–हीनता का कार्य नहीं किया है ? मैं उनके लिए क्या कुछ कहूँ !

पति के बारे में मौसी के शब्दों को सुनकर दमयन्ती ने कहा–मौसी जी! क्षमा करना, वे आपकी आलोचना के पात्र नहीं है। आप इतनी बड़ी आलोचना मत कीजिएँ वस्तुतः वे महान हैं, उनमें कर्तव्यनिष्ठा है। वे मुझे छोड़कर गये हैं, तो उसमें भी उन्होंने अपने

कर्तव्य का पालन ही किया है। वन की विकट और विकराल स्थिति का अनुमान आप नहीं लगा सकतीं। उन्होंने सब आगापीछा सोचकर यह कार्य किया है। बुद्धिमानी भी इसी में है कि जहाँ भौतिक और दैविक दोनों तरह की विपतियाँ आयें, तो उसमें व्यक्ति निर्णय कर ले कि यहाँ मेरा क्या कर्तव्य हैं? उन्होंने अपने कर्तव्य को निभाते हुए लिखित रूप से मुझे ऐसी भी सूचना दी कि इस भयानक जंगल में तुम्हारा साथ रहना उपयुक्त नहीं है। अतः मेरा निर्देश है कि तुम अपने पिता के घर चली जाना। किस रास्ते से मैं पिता के घर पर पहुँच सकती हूँ, इसका भी उन्होंने संकेत दिया था। इस स्थिति में न तो मैंने ही पतिदेव को छोड़ा है और न उन्होंने ही मुझे त्यागा है।

दमयन्ती के साहस व सत्पुरुषार्थ से भरे शब्दों को सुनकर महारानी गद्‌गद् होकर बोलीं–वाह री वीरांगना ! जैसा मेरा अनुमान था, वैसी ही तू निकली। तू अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हुई और नल महाराज के लिए मैंने जो शब्द कह दिये, उनके लिए मुझे खेद है। मैं क्षमा चाहती हूँ। दानशाला में अब और ज्यादा बात करना ठीक नहीं है। यहाँ से चलो और चलकर राजभवन को सुशोभित करो। ऐसा कहकर जब महारानी चन्द्रयशा ने दमयन्ती के कंधे पर हाथ रखा, तो इच्छा न होने पर भी वह राजभवन की ओर चल दी।

राजभवन में आकर महारानी ने दासियों से कहा–देख क्या रही हो? इतने समय तक तो मैं इसे एक अनाथ नारी समझ रही थी, परन्तु यह सनाथ है, यह मेरी है और मेरे परिवार की है। इसलिए जिस प्रकार तुम मेरे लिए सुख–साधन की सामग्री तैयार करके लाती हो, उसी प्रकार इसके लिए भी लाओ।

महारानी के व्यवहार में आये इस परिवर्तन का कारण क्या है? इसका कारण स्वार्थ की भावना है, मोह की प्रबलता है। पहले निःस्वार्थ भावना थी और अब स्वार्थ की भावना आ गयी है, जिससे अपनी भावना के अनुसार महारानी दमयन्ती पर सर्वस्व निछावर करने की तैयारी कर रही हैं।

दमयन्ती महारानी के विचारों की नहीं थी। विपद्ग्रस्त होने पर भी वह अपने आप में संतुष्ट थी। वह सोच रही थी कि मुझे अपने आप में सजग रहना चाहिएँ मैंने अभी मोहमाया का सर्वथा त्याग नहीं किया है, परन्तु जितना भी कर पाऊँ, उतना ही मेरा जीवन भीतर से पवित्र रह सकेगा, उतनी ही मैं गंदगी को दूर कर सकूंगी। वह मौसी के सामने हाथ जोड़कर बोली–मातेश्वरी मौसी जी! आपकी यह कृपादृष्टि महान है, इससे मैं उऋण नहीं हो सकती। आप अपने कर्तव्य की दृष्टि से यह सब कर रही हैं, परन्तु मेरी जो प्रतिज्ञा है, उसकी रक्षा की जिम्मेदारी मेरी तरह आप पर भी है। मैं गृहस्थावस्था में रहने वाली पतिव्रता नारी हूँ। मेरे पतिदेव इस समय कहाँ हैं, इसका मुझे कुछ भी पता नहीं है। मैंने यह प्रण कर रखा है कि जब तक पतिदेव से मिलना नहीं होता है, तब तक मुझे श्रंगार के निमित्त न तो स्नान करना है, न श्रृंगार सजाना है और न मिष्ठान्न–पकवान ही खाना हैं। मुझे तो शुद्धि के रूप में पूर्वकृत कर्मों का फल–भोग करते हुए अपने आत्मदेव को जगाना है।

दमयन्ती के वचनों को सुनकर महारानी आश्चर्यचकित रह गयी और सोचने लगीं कि इसकी भी तो अपनी मर्यादा है। यदि मैं इसको श्रृंगार आदि करने के लिए कहती हूँ, तो नैतिकता की दृष्टि से इसे गिराती हूँ। यह सोचकर वह मौन रह गयीं।

दमयन्ती की बात को सुनकर वहाँ रहने वाली अन्य स्त्रियाँ भी विस्मित हो गयीं कि यह अपने आप में कितनी दृढ़प्रतिज्ञ है और हम क्या सोच रही हैं ?

मौसी के चरणों में नमस्कार करते हुए दमयन्ती बोली–मौसी जी! मैं आपके उपकार का बदला नहीं चुका सकती।

चन्द्रयशा–सुपुत्री! तेरा जीवन महान है। मेरे जीवन में विकार हैं और मैं विकारों से भरी हुई हूँ। लेकिन तेरे अनुभवों को सुनकर मैं भी शिक्षा प्राप्त करना चाहती हूँ। साथ ही मैं यह भी जानना चाहती हूँ

कि महाराज नल ने तुम्हारी शिक्षाप्रद सलाह को मानना क्यों छोड़ दिया था?

राजभवन में रहने वाले सभी लोग दमयन्ती के वृत्तांत को सुनने के लिए उत्सुक थे। महाराज ऋतुपर्ण को भी जब वृत्तांत सुनाने की बात मालूम हुई तो वे भी आ गये और सबके–सब दत्तचित होकर सुनने के लिए दमयन्ती के सामने बैठ गये।

जिस वक्त व्यक्ति किसी विषय को जिज्ञासापूर्वक श्रवण करने के लिए दत्तचित्त होकर बैठता है, तो उस समय उसके लिए सारा संसार शून्य–सा हो जाता है, उसका ध्यान इधर–उधर नहीं जाता है। शास्त्रें में विनीत शिष्य के लिए स्थान–स्थान पर संकेत है कि तुम एकाग्र चित्त से सुनो। मस्तिष्क को एकाग्र करके श्रवण की जाने वाली बात को सुनोगे, तो ग्राह्य बातों को ग्रहण कर पाओगे।

दमयन्ती विचारमग्न होकर अपनी पूर्व अवस्था के बारे में सोच रही थी और जैसे ही उसने मौसी की बात सुनी, तो सब पुरानी स्मृतियाँ चित्र की तरह मानस–पटल पर उभरने लगीं कि मैं इनको क्या उत्तर दूं? वह अपनी अंतर्वेदना से द्रवित होकर रुंधे स्वर में बोली–आप मुझ से क्या पूछ रही हैं और मैं क्या कुछ कहूँ ? राज्य प्राप्ति के बाद राज्य करने का इच्छुक उनका भाई कुबेर खुद राज्य का स्वामी बनना चाहता था और उसने अपनी इस इच्छा–पूर्ति के लिए ऊपर से हमदर्दी दिखाते हुए अपने दुष्ट मित्रें की सहायता से उन्हें कुव्यसनों में डाल दिया। समय–समय पर मैं सचेत भी करती रही, लेकिन उन्होंने अपने भाई पर इतना विश्वास कर लिया कि मेरी उचित सलाह की भी उपेक्षा करते रहे और दुव्यर्सनों के साथ जुआ भी खेलने लगे, जिसका परिणाम यह हुआ कि सब राजपाट गँवा कर जंगल में जाना पड़ा।

जंगल में घटी सारी घटनाओं और अनुभवों को सुनाते हुए अन्त में कहा–कर्मों का फल भोगने के लिए कुछ न कुछ कारण अवश्य बन ही जाते हैं।

अपने विचारों को कहने के बाद जब दमयन्ती चुप हो गयी, तो महाराज ऋतुपर्ण कुछ क्षणों तक अपने चिन्तन में ही डूबे रहने के बाद बोले–बेटी! आज जो कुछ भी तुमने अपना वृत्तान्त सुनाया, उससे प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा ले सकता है। इस वृत्तान्त को सुनकर मैं समझ पाया हूँ कि इस विश्व में आत्मा सब कुछ करने में समर्थ है। आत्मा की शक्ति सर्वोपरि है, फिर भी पूर्वजन्म में उसने जो कर्म बांध लिए हैं, वे कभी– कभी बलवान हो जाते हैं और आत्मा की शक्ति को कुंठित कर देते हैं, यह तुम्हारे जीवन–वृत्तान्त को सुनने से ज्ञात हो रहा है। परन्तु कष्ट का ध्यान करके रोते रहने से जीवन का विकास नहीं हो सकता है। उसको तो भूल ही जाना चाहिए और आगे की साधना के लिए प्रयत्न करना चाहिएँ

सुपुत्री ! कर्म किसी को नहीं छोड़ते हैं। जो सूर्य प्रकाश करने वाला है और गगन–मण्डल में अबाधगति से चलता है, उसे भी कभी– कभी घनघोर बादल घेर लेते हैं, किन्तु सूर्य उन बादलों को देखकर घबराता नहीं और जब बादल बिखर जाते हैं, तब सूर्य का प्रकाश पुनः अपने रूप में चमकने लगता है। कभी राहु के विमान से भी उसकी किरणें आच्छादित हो जाती हैं, परन्तु यह भी कुछ समय के लिए ही होता है। इसी तरह आत्मा के सम्बन्ध में भी समझना चाहिएँ कर्मों का बन्ध करने वाली आत्मा ही है और उनका फल भी आत्मा ही भोगती है। विवेकशील आत्मा कर्मफल भोगते समय न रोती है, न चिल्लाती है, किन्तु जीवन में शांति के साथ उसका अनुभव करती रहती है। इसको तुमने अपने जीवन में करके दिखाया है, अन्धकार के बीच प्रकाश को खोजा है तथा धैर्य के साथ जीवन को आगे बढ़ाया है।

मनुष्य को कर्म करते समय भान नहीं रहता और वह अन्धा बनकर बुरे से बुरे कर्म कर डालता है। कर्म का बन्ध हो जाने के बाद, जब उसका उदय आता है, तब विवेकशील व्यक्ति चिन्तन करता है कि मेरे ऊपर जो कष्ट आया है, संकट आया है, वह

अचानक नहीं आया है, आकाश से नहीं टपका है, किन्तु यह संकट मेरे द्वारा ही पैदा किया हुआ है और जो मैंने चिकने कर्म बांधे, उनका यह परिणाम है। इसको मुझे सहर्ष भोगना चाहिएँ

कभी—कभी मेरे भाई ऐसा सोचते हैं कि बुरे कर्म करने से उसका बुरा फल मिलता है, तो जान—बूझकर ऐसा हम क्यों करते हैं? क्या कोई जानते हुए भी गड्ढ़े में गिरेगा? बात तो किसी दृष्टि से ठीक मालूम पड़ती है, प्रश्न भी योग्य है, परन्तु व्यक्ति चिन्तन करे, तो समाधान भी भलीभांति प्राप्त कर लेगा। पूर्वजन्मों के कर्मों का उदय जब आता है, तो आत्मा कर्मों की उदय—स्थिति में अपने हिताहित का भान भूल जाती है। उदाहरण के तौर पर सोचिए कि एक व्यक्ति जो कभी नशा नहीं करता और कुसंगति में पड़कर साथियों के आग्रह से नशा कर लेता है और जब उसका नशा चढ़ने लगता है, तब मस्तिष्क में चिन्तन करने वाली शक्ति की संवाहक नाड़ियों में शून्यता आ जाती है और अपने हिताहित का भान भूल जाता है कि यह क्लोरोफार्म की तरह नसों को शून्य बनाने वाला सूक्ष्म जहर है। इसी तरह से यह आत्मा मोहरूपी दारु पी लेती है, जिससे अपने स्वरूप को भूलकर न चाहते हुए भी बुरे कर्म करने में लिप्त हो जाती है और जब उसके कटुफल मिलते हैं, तो वह रोती है, चिल्लाती है।

महाराज ऋतुपर्ण द्वारा व्यक्त किये गये विचारों को दमयन्ती विनीत होकर सुनती रही और सोच रही थी कि ये मुझसे बड़े हैं, बुजुर्ग हैं और मेरे अशांत मन को शांति पहुँचाने के लिए ऐसा कह रहें हैं, अपना बहुमूल्य समय व शक्ति मुझे सांत्वना देने के लिए खर्च कर रहे हैं। अतः मेरा कर्तव्य है कि मैं इनकी बात को ध्यानपूर्वक सुनकर अपने अन्दर जो कमी हो, उसको निकालने की कोशिश करूं।

विनयशील व्यक्ति की तो यही भावना होती है, परन्तु जो विनीत नहीं होता है, वह बुजुर्गों की बात सुनकर सोचता है कि इसे तो मैं अच्छी तरह से जानता हूँ और बीच में ही बात काटकर अपना

अज्ञान प्रदर्शित कर देता है। शास्त्रकारों ने विनीत के गुण बताते हुए कहा है कि गुरु जब शिक्षा दे रहे हों, उसे बीच में नहीं बोलना चाहिए और चिंतन करते हुए सोचना चाहिए कि गुरुदेव ने मुझे बहुत ही उत्तम शिक्षा दी है। इस तरह से सोचने वाले व्यक्ति के जीवन का विकास होता है। दुनिया में ऐसे भी स्त्री–पुरुष देखे गये हैं, जो जानते तो कुछ नहीं, परन्तु अपने अभिमान का प्रदर्शन करने के लिए डींग मारते हैं कि मैं सब कुछ जानता हूँ। जिनके सिर पर झूठे अभिमान का भूत सवार हो जाता है, वे कुछ भी नहीं सीख पाते और प्रत्येक बात में तर्क–वितर्क करते रहते हैं, किन्तु जो विनयवान होते हैं, वे अभिमान नहीं दिखाते हैं।

दमयन्ती की विनयशीलता देखकर महाराज ऋतुपर्ण गद्‌गद् हो उठे और सोचा कि उसके मन में शांति का समुद्र लहरा रहा है। अगर इसके मन में शांति का झरना नहीं होता, तो जब यह यहाँ आयी थी, तभी मौसी के सामने अपना परिचय देते हुए दुःख की गाथा कहने लग जाती। इसको क्या शिक्षा देनी है। वे दमयन्ती के गुणों से बहुत प्रभावित हुएँ

दत्तचित्त होकर दमयन्ती की बातें सुनने के लिए बैठे हुए व्यक्तियों को समय का पता नहीं लगा। अकस्मात् महाराज ऋतुपर्ण अपने आसपास प्रकाश को देखकर बोले–क्या शाम हो चुकी है ?

शाम होने की बात सुनकर बैठे हुए व्यक्ति भी सोचने लगे कि यहाँ दीपक भी नहीं है, फिर भी यह प्रकाश कहाँ से आ रहा है? महाराज ऋतुपर्ण को भी विचार आया कि प्रकाश कैसे हो रहा है? क्या किसी ने दीपक जलाया है? और दीपक नजर नहीं आया, तो महारानी की ओर देखकर वे बोले–यह प्रकाश कहाँ से आ रहा है?

महारानी–राजन् ! इस दिव्य महिला के ललाट से यह प्रकाश निकल रहा है। मैं इसकी शक्ति को बचपन से ही जानती हूँ और मैंने सुना था कि ससुराल जाते समय जब इसने वन में प्रवेश किया, तो

कार्यविशेष के इरादे से इसने अपने ललाट पर हाथ लगाया था, उस समय भी ऐसा प्रकाश हुआ था। यदि किसी समय भी यह अपनी इस शक्ति को प्रगट कर देती, तो मैं इसे पहिचान लेती।

ऋतुपर्ण–क्या यह बात सच है? मैं कैसे मान लूँ कि यह प्रकाश इसके ललाट से निकल रहा है?

महारानी–क्या आप किरणों की प्रभा को नहीं देख रहे हैं? यदि कोई व्यक्ति इसके ललाट के सामने हाथ रख दे, तो प्रकाश सीमित हो जायेगा।

ऋतुपर्ण को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ और उसकी परीक्षा करने के लिए स्वयं उन्होंने ललाट के सामने हाथ रख दिया, तो देखा कि हाथ के रखने के कारण प्रकाश सीमित हो गया है। यह देखकर उन्हें विश्वास हो गया कि प्रकाश दमयन्ती के ललाट से आ रहा है।

आज के भाई भी इसी प्रकार की कल्पनाएँ कर सकते हैं। परन्तु कल्पनाएँ वे ही करते हैं, जिन्हें आध्यात्मिक शक्ति का ज्ञान नहीं है। लेकिन जिसने आध्यात्मिक शक्ति से सृष्टि के रहस्य को समझ लिया है कि इस सृष्टि में कौन–कौन से तत्त्व हैं और हमारे शरीर में कौन–कौन से तत्त्व किस किस रूप में हैं, तो आश्चर्य की कोई बात नहीं रहेगी। जिन आत्माओं को ऐसी शक्ति प्राप्त होती है, वह सब उनके पूर्वजन्म की क्रिया का ही परिणाम है। दमयन्ती ने भी ऐसी ही पुण्यशक्ति पायी है।

सभी व्यक्ति उसके बारे में बातें करते हुए उठने की तैयारी कर ही रहे थे कि इतने में ही आकाश से अपनी ओर आते हुए एक दिव्य प्रकाश–पुंज को देखकर वे सब वहीं रुक गये। कुछ व्यक्तियों को भयभीत होते देखकर महारानी चन्द्रयशा ने कहा–आप लोग डरो मत। यह पुण्यवान आत्मा जब से यहाँ आयी है, तभी से अनेक आश्चर्यकारी बातें हो रही हैं। अतः संकट आने का तो आप लोग विचार ही न करें।

धीरे–धीरे वह प्रकाश पुंज नीचे उतरा और दमयन्ती के चरणों में नमस्कार करने के साथ–साथ हाथ जोड़कर दूर खड़ा हो गया।

महाराज ऋतुपर्ण इस दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित हो गये और दमयन्ती की ओर देखकर बोले–यह कौन है?

दमयन्ती ने दिव्य पुरुष की ओर देखकर कहा–कृपया आप अपना परिचय दीजिएँ

देव बोला–मैं पूर्वजन्म में इसी राजधानी में रहने वाला था। किसी दिन राजभवन से आभूषणों को चुराकर भाग रहा था, तो वहाँ के पहरेदारों ने मुझे पकड़ लिया और महाराज ऋतुपर्ण ने फांसी का दंड दिया। सिपाही जिस रास्ते से मुझे फांसी देने के लिए ले जा रहे थे, उस समय दानशाला में बैठी इस सती की ओर मैंने कातर दृष्टि से देखा, तो इसने अपनी शक्ति के प्रभाव से मुझे बचा लिया। मौत से बचने पर मैंने सोचा कि इस पुण्यात्मा ने मेरे सरीखे पापी व्यक्ति को अभयदान दिलाकर जो श्रेष्ठ कार्य किया है, उसका मैं उपकार नहीं भूल सकता।

मृत्युदण्ड से बच जाने पर मेरा विवेक जागृत हुआ और मैंने सोचा कि यह मनुष्य–तन मुझे भी मिला है और इसे भी मिला है। यह भी अन्न–जल से अपने शरीर का पोषण करती है और मैं भी करता हूँ। फिर हम दोनों में अन्तर का कारण क्या है? क्या मैं भी इसी सती की तरह अपने जीवन का निर्माण नहीं कर सकता? ऐसा सोचकर इस सती के उपदेशों से प्रेरणा लेकर मैंने भी अपने जीवन का आमूलचूल परिवर्तन करने का निश्चय कर लिया और सती के चरणों में रहकर धर्म के मर्म को समझा। सती ने मुझ पापी पर दया करके वास्तविक धर्म समझाया और हिताहित का बोध कराया।

सती ने मुझे धर्म का मर्म ही नहीं समझाया, बल्कि साथ–साथ मुनिराज के पास ले जाकर परम प्रणिधान के स्वरूप का भी बोध कराया। इसके फलस्वरूप मैं अपनी आँतरिक शक्ति की प्राप्ति की

साधना में लीन हो गया और आत्मिक शुद्धि के लिए प्रयत्न करने लगा। किसी एक दिन मैंने गुरुदेव से निवेदन किया कि आप विशिष्ट ज्ञानी हैं, अतः ऐसा कोई उपाय बताइए कि मैं अपने पूर्वकृत पापों का परिमार्जन करके जल्दी से जल्दी अपने आपको शुद्ध बनाऊँ।

गुरुदेव ने मेरे निवेदन पर ध्यान देकर बताया कि मार्ग तो अनेक हैं और उनको अपना कर जो दृढ़ रहता है, परिस्थितियों से विचलित नहीं होता है, तो वह थोड़े से समय में शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर सकता है। उनमें से एक कठिन मार्ग यह है कि श्मशान में जाकर ध्यानपूर्वक भिक्षु–पडिमाओं की साधना करते हुए जब व्यक्ति अन्तिम पडिमा को साधता है, तो उस समय देव सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी, पशु सम्बन्धी आदि कोई भी उपसर्ग आये, कोई गाली दे, उत्तेजना दिलाये, भयावने दृश्य दिखाये, लेकिन ध्यान में तल्लीन रहता है, विचलित नहीं होता है, उनसे भयभीत नहीं होता है और अपने ध्यान से डिगता नहीं है तो उसी रात्रि में या तो अवधि–ज्ञान या मनःपर्यायज्ञान या केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है और यदि भिक्षु–पडिमाओं की साधना करते समय परभव सम्बन्धी आयु का बन्ध हो जाये, तो अन्तर्ज्योति में तल्लीन होते हुए वह स्वर्गगामी होकर देव भी बन सकता है।

गुरुदेव ने मुझे जो भिक्षु–पडिमाओं को साधने का मार्ग बताया था, तदनुसार मैं श्मशान में जाकर उन पडिमाओं को साधता हुआ अन्तिम पडिमा को साधने के लिए ध्यानस्थ हुआ, तब अनेक प्रकार की कर्कश आवाजें आने लगीं। कोई मुझे गालियाँ दे रहा था, कोई कह रहा था कि देखो! इस भुखमरे को, कमाया नहीं जाता, तो साधु बन गया है और यहाँ आकर आत्महत्या करने के लिए बैठा है। इसी तरह कोई कुछ कह रहा था, तो कोई कुछ कहता था। इससे मैं अपने अशुद्ध परिणामों के कारण उत्तेजित होने लगा, लेकिन विवेकज्ञान से अपने आप पर नियन्त्रण करता हुआ विचार करने लगा कि ये

शब्द मुझे अपमानित करने के लिए नहीं हैं, किन्तु अन्तर् का परिमार्जन कराने में सहायक है। ये बड़े उपकारी हैं, मेरी आत्मशक्ति को सबल बनाने वाले हैं। इसी समय मेरे चारों और आग की लपटें फैलीं और ऐसा दिखने लगा कि मुझे भस्मीभूत कर देंगी। ऐसे समय में भी मैं अपने आत्मस्वरूप में लीन रहा और आत्मशुद्धि की प्रकर्षता से अवधिज्ञान प्राप्त करता हुआ स्वर्ग में ऋद्धिशाली देव हुआ हूँ।

देवलोक में उत्पन्न होने के बाद मैंने अवधिज्ञान से जाना कि इस देवऋद्धि को प्राप्त करने में सहायक भूलोक में रहने वाली यह पवित्र स्त्री है। इसीलिए सर्वप्रथम इस पवित्र आत्मा के दर्शन करने के लिए यहाँ आया हूँ। मैं यहाँ आने के लिए तैयारी कर रहा था, तो अनेक देवी–देवताओं ने कहा कि आप हमारे स्वामी हैं, कम से कम दो घड़ी नाटक देख लीजिएँ तब मैंने सोचा कि यहाँ दो घड़ी के नाटक में भूलोक की न जाने कितनी पीढियाँ बीत जायेंगी, जिससे सती के दर्शन नहीं हो सकेंगे और ऐसा सोचकर सबसे पहले सती के दर्शन करने के लिए आया हूँ। मैं जन्म–जन्म में इस सती के उपकार को नहीं भूल सकता। इसी ने मुझे आत्मशुद्धि का पवित्र मार्ग दिखाया है।

अपना परिचय देने के बाद देव पुनः दमयन्ती को नमस्कार करके अन्तर्धान हो गया।

देव के वृत्तान्त को सुनकर सभी अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करते हुए कहने लगे कि यदि उस पिंगलक नामक चोर को सती सन्मार्ग पर न लगाती, तो वह अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके कुगति में जाता, परन्तु सती को धन्य है, जिसने इसको सद्‌गति प्राप्त करने का मार्ग बताया।

देव का वृत्तान्त सुनकर महाराज ऋतुपर्ण आश्चर्य–चकित हो गये और इसी तरह अन्य व्यक्ति भी अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करते हुए अपने–अपने स्थान की ओर चल दिये। उनमें से कुछ सोच रहे

थे कि यह सब त्याग की, शील की और धर्म की महिमा है। इस प्रकार की क्षमता जब मानव के पास है, तो तब क्यों व्यर्थ के कामों में अपनी शक्ति को बर्बाद करता है। यदि हम भी अपने आपको शुद्ध आत्मस्वरूप की साधना में लगा देते हैं, तो हमें भी ऐसा सुयोग प्राप्त हो सकता है।

❖ ❖ ❖

दमयन्ती पिता के घर में

महाराज ऋतुपर्ण के राजभवन में हर्ष–उल्लास के साथ नित नये मंगल–महोत्सव हो रहे थे, जिससे समय के बीतने का ध्यान ही नहीं रहा। कुछ दिन बीतने के बाद एक दिन कुंडिनपुर से आये ब्राह्मण ने महाराज ऋतुपर्ण से निवेदन करते हुए कहा–राजन! हमारे स्वामी दमयन्ती का पता नहीं मिलने के कारण बहुत ही दुःखी हो रहे होंगे और महारानी जी तो उनसे भी अधिक दुःखी होंगी। वे अधीरता से मेरा इन्तजार कर रहे होंगे। दमयन्ती आपके पास काफी समय तक रह चुकी है। अब आपकी आज्ञा हो, तो राजकुमारी को साथ लेकर कुंडिनपुर रवाना हो जाऊँ। आप महारानी जी को समझाकर दमयन्ती को मेरे साथ भेजने का प्रबन्ध कर दीजिए।

विप्रवर की भावना पर विचार करते हुए ऋतुपर्ण ने सोचा कि बात तो उचित है। दमयन्ती के वियोग में महाराज भीमरथ और महारानी पुष्पवती दुःखी होंगे। जब हमने नल के राज्य हारने आदि के समाचार सुने थे, तो हमें कितना दुःख हुआ था, तब इसके माता–पिता के दुःख का तो अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता। उनके दुःख को दूर करना हमारा कर्तव्य है। वे महारानी चन्द्रयशा के पास जाकर बोले–हम लोग यहाँ आनन्द का अनुभव कर रहे हैं, लेकिन महाराज भीमरथ की स्थिति का भी अपने को ध्यान कर लेना चाहिए कि वे दमयन्ती के लिए कितने दुःखी हो रहे होंगे? विप्रवर दमयन्ती की खोज में देश–देश घूमते हुए यहाँ आये और सौभाग्य से उनको यहाँ

सफलता मिल गयी। अब उनकी इच्छा है कि दमयन्ती को लेकर जल्दी से जल्दी कुंडिनपुर लौट जायें। वे यहाँ से जाने के लिए आपकी भी अनुमति चाहते हैं।

चन्द्रयशा–प्राणों से प्यारी राजदुलारी को मैं अपने पास ही रखना चाहती हूँ और अपने बहिन–बहनोई को भी यहाँ ही बुलाने का विचार करती हूँ।

ऋतुपर्ण–तुम तो मोहवश ऐसी बातें कर रही हो, परन्तु सोचो तो सही कि ऐसा कैसे हो सकता है? इसको वहीं भेजना ठीक है। हम लोगों के लिए तो यही अच्छा है कि सहर्ष भेजने की तैयारी करायें।

महारानी चन्द्रयशा को ऋतुपर्ण की बात योग्य प्रतीत हुई और आपस में विचार करके सैनिक, सेवकों आदि के साथ राजकीय सम्मानपूर्वक दमयन्ती को कुंडिनपुर भेजने का निश्चय किया गया। महाराज ऋतुपर्ण ने बाहर आकर विप्रवर से कहा–आपकी भावना के अनुरूप शीघ्र ही दमयन्ती को कुंडिनपुर भेजने का प्रबन्ध कर रहे हैं।

राजा ऋतुपर्ण ने एक दूत को संदेश देकर महाराज भीमरथ के पास भेजा कि दमयन्ती यहाँ पर सकुशल है। हम लोग तो उसे पहिचान नहीं सके थे, लेकिन आपके भेजे हुए विप्रवर ने उसे पहिचान लिया है और शीघ्र ही उसे दो–चार दिन में आपके पास भेज रहे हैं।

दमयन्ती के रहने से नगरवासियों में आनन्द और उत्साह का वातावरण बन गया था। लेकिन जैसे ही उन्होंने दमयन्ती के विदा होने के समाचार सुने, तो वे सब राजभवन के सामने इकट्ठे हो गये। वे उसके जाने से दुःखी हो रहे थे, लेकिन उन्हें इस बात का हर्ष था कि वह वर्षों से बिछुड़े हुए अपने माता–पिता से मिलने जा रही है। अतः पहुँचाने के लिए साथ में चलने लगे। बहुत दूर तक साथ–साथ चलने के बाद राजा ऋतुपर्ण जनसमुह को संबोधित करके बोले–इस

सती के रहने से यहाँ बहुत ही आनन्द रहा, लेकिन उधर इसके माता–पिता इससे मिलने के लिए बहुत ही अधीर हो रहे हैं। अतः अब हम लोगों को वापस लौट चलना चाहिए।

महाराज ऋतुपर्ण की बात को सुनकर नगरवासियों ने सोचा कि महाराज की आज्ञा उचित है और वे सब वहीं पर ठहर गये।

महाराज ऋतुपर्ण ने साथ में जाने वाले सैनिकों, घोड़ों, रथों आदि की व्यवस्था का निरीक्षण करके सेनापति को सुखपूर्वक कुंडिनपुर पहुँचाने का आदेश दिया और आशीर्वाद देते हुए दमयन्ती को विदा किया।

हजारों व्यक्तियों की शुभ कामनाओं और आशीर्वादों को साथ लेकर दमयन्ती रथ में बैठी और जब तक रथ आँखों से ओझल नहीं हो गया, तब तक विदा देने के लिए आये हुए सभी व्यक्ति टकटकी लगाये रथ की ओर देखते रहे और रथ के दृष्टि से ओझल हो जाने के बाद वे उदास मन से नगर की ओर चल दिये।

महाराज भीमरथ प्रतिदिन दमयन्ती की खोज में गये हुए अनुचरों की उत्सुकता से राह देखा करते थे, लेकिन जब कोई संदेश नहीं मिलता था, तो उदास होकर सोचने लगते थे कि आज नहीं तो कल अवश्य ही कोई न कोई समाचार सुनने को मिलेगा और इसी विश्वास के सहारे वे महारानी को भी धैर्य बंधाते रहते थे। प्रतिदिन की तरह आज भी वे अनुचरों के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे कि राजा ऋतुपर्ण के दूत ने सेवा में उपस्थित होकर अपना संदेश कह सुनाया, जिसे सुनकर वे इतने हर्ष–विभोर हो गये कि अपने सब आभूषण पारितोषिक रूप में दूत को दे दिये और दूत से बोले–आप विश्रामगृह में जाकर स्नान आदि करके विश्राम कीजिए।

महाराज भीमरथ के हर्ष का पार नहीं रहा और महारानी को समाचार सुनाने के लिए वे अंतःपुर में पहुँचे। महारानी ने जैसे ही पतिदेव को तेजी से अपनी ओर आते देखा, तो वह आश्चर्यचकित हो

गयी कि आज क्या बात है? जिनके चेहरों पर वर्षों से उदासी छाई हुई है, वे आज इतने हर्षित होकर कैसे पधार रहे हैं? वह उत्सुकता से उनकी ओर देखने लगीं।

महाराज भीमरथ महारानी के पास पहुँचकर अपने आवेग को शांत करते हुए बोले–प्राणप्यारी दमयन्ती का पता लग गया है। यह देखो पत्र आया है।

महाराज भीमरथ के हाथ से पत्र लेकर महारानी ने उसे पढ़ा, तो उसकी आँखों से आँसू बहने लगे और रुंधे–कंठ बोली–दमयन्ती महाराज ऋतुपर्ण के यहाँ कैसे पहुँची? उन्होंने बड़ा उपकार किया है। अब जल्दी करो, हम सब उसके स्वागत की तैयारी करें।

राजकुमारी दमयन्ती के शीघ्र ही यहाँ पहुँचने के समाचार राजभवन और नगर में हवा की तरह फैल गये। नगर को सजाने के ऐलान को सुनकर सभी नगरवासियों द्वारा प्रत्येक घर और चौराहा नयी –नवेली दुलहिन जैसा सजाया जाने लगा। नगरवासी इतने उत्साहित हो गये थे कि समाचार सुनने के दिन से ही घर–घर में मंगल गीत चालू हो गये। राजा ऋतुपर्ण ने अपने पत्र में यह भी उल्लेख किया था कि अपनी मर्यादा के अनुरूप चतुरंगिनी सेना के साथ उसे भेज रहा हूँ। महाराज भीमरथ ने भी स्वागत करने के लिए अपनी सेना को तैयार रहने का आदेश दिया।

दमयन्ती के आगमन की उत्सुकता से प्रतीक्षा की जा रही थी और जैसे ही खबर मिली कि वह आजकल में आने वाली है, तो सारे नगरवासियों और सेना के साथ महाराज भीमरथ ने नगर से कई मील आगे जाकर पड़ाव डाल दिया और जैसे ही दमयन्ती के साथ आने वाले हाथी, घोड़े, रथ सैनिकों आदि के चलने से धूल उड़ती देखी, तो स्वागत करने के लिए आगे बढ़े। जब दमयन्ती को मालूम हुआ कि नगरवासियों के साथ पिताजी आ रहे हैं, तो वह अपने रथ से उतर कर पैदल चलने लगी और इधर महाराज भीमरथ ने भी देखा

कि मेरी लाडली पैदल आ रही है, तो वे भी रथ से नीचे उतर गये और निकट पहुँचने के लिए पैदल चल दिये।

जैसे ही महाराज भीमरथ और दमयन्ती आमने–सामने पहुँचे, तो कुछ लम्बे डग भरकर एक दूसरे के गले लग गये। महाराज भीमरथ दमयन्ती को देखकर गद्‌गद् हो उठे और दमयन्ती पिताजी के चरणों में नतमस्तक हो गयी। उस समय दोनों के हृदयों में हिलोरें मार रहा हर्ष आँखों से झलक उठा और उस अश्रुजल से पिताजी पुत्री का अभिषेक कर रहे थे और पुत्री पिता के चरण पखार रही थी। महाराज भीमरथ बहुत देर तक दमयन्ती के सिर पर हाथ फेरते रहे और जब हृदय का वेग कुछ कम हुआ, तो अपने आपमें शांत होते हुए बोले–बेटी! उठो।

दमयन्ती ने अपने हर्ष के वेग को शांत करके पूछा–पिताजी! आपके चित्त की प्रसन्नता तो है? आपका स्वास्थ्य ठीक है? मैं हतभागिनी वर्षों के बाद आपकी सेवा में आयी हूँ। आप मुझे क्षमा करेंगे।

भीमरथ–सुपुत्री मेरा स्वास्थ्य और चित्त की प्रसन्नता तो तुम पर निर्भर थी। जब तक तुमको नहीं देखा था, तब तक न तो चित्त ही प्रसन्न था और न स्वास्थ्य ही ठीक था, परन्तु अब सब ठीक हो जायेगा। मेरे चित्त की प्रसन्नता इसी में है कि तू मिल गयी।

दमयन्ती–माताजी तो कुशल हैं?

भीमरथ–जो मेरी हालत है, वह हालत उनकी की भी है और वे भी साथ में आयीं हैं।

माता के साथ आने की बात सुनकर दमयन्ती उनसे मिलने के लिए दौड़ पड़ी और महारानी ने बेटी को अपनी ओर आते देखा, तो वह भी रथ से नीचे उतरीं और आगे बढ़कर दमयन्ती को छाती से चिपका कर आँसू बरसाने लगीं। कुछ देर के लिए वातावरण स्तब्ध –सा बन गया। हृदय का उमड़ता वेग जब कुछ कम हुआ, तो माता

ने दमयन्ती के शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा कि बेटी! शरीर तो.... ....और कहते–कहते पुनः गला भर आया।

दमयन्ती–मातृस्नेह ही जगत का पोषण करने वाला है, यदि यह नहीं हो, तो जगत की दशा दूसरी ही होती। मैं आपके दर्शन करके अपने को धन्य समझ रही हूँ।

माता–तू जो कुछ भी कह रही है, सो ठीक है, लेकिन अपनी यह क्या हालत बनाली है?

दमयन्ती–आपके दुलार से सब ठीक हो जायेगा। मैं तो जंगल में थी, जहाँ न खाने का ठिकाना और न सोने का, लेकिन राजभवन में सब साधनों के होते हुए भी आपकी यह कैसी दशा हो रही है?

माता–मन में बार–बार यही विचार आता था कि मेरी पुत्री वन में न जाने कैसे–कैसे खट्टे–मीठे फल खाती होगी और कहाँ सोती होगी। इन्हीं विचारों के कारण राजभवन में रहते हुए भी सब सूना–सूना लगता था।

महाराज भीमरथ तथा दूसरे व्यक्ति मां–बेटी के इस अलौकिक मिलन को देख कर हर्षविभोर हो रहे थे। कुछ दूर तक वे सभी आनन्द का अनुभव करते रहे, जिससे जंगल में भी मंगल हो गया। सभी की जल्दी से जल्दी नगर में पहुँचने की उत्सुकता को देखकर महाराज भीमरथ बोले–अब यहाँ से चलना चाहिए।

महाराथ भीमरथ के संकेत को सुनकर सभी अपने–अपने वाहनों में बैठ गये और जुलूस के रूप में रवाना होकर राजभवन में आये। वहाँ जुलूस सभा के रूप में परिणत हो गया। साथ में आये जनसमूह के यथास्थान बैठ जाने के बाद महाराज भीमरथ ने प्रजाजनों को सम्बोधित करते हुए कहा कि आज वर्षों से बिछुड़ी हुई गुणवान राजकुमारी दमयन्ती का यहाँ आगमन हुआ है। अतः इस शुभ अवसर पर हर्षोल्लास मनाने के लिए मैं सारे राज्य में सात दिन तक

उत्सव मनाना चाहता हूँ और उसमें आप भी भाग लें।

महाराज की आज्ञा सुनकर प्रजाजन उत्सव मनाने के लिए हर्षपूर्वक अपने–अपने घरों की ओर रवाना हो गये।

सारे राज्य में सात दिन तक उत्सव मनाये जाने की घोषणा के सम्बन्ध में दमयन्ती ने पिताजी को निवेदन करते हुए पूछा–आप किस रूप में उत्सव मनाने का विचार कर रहे हैं?

भीमरथ–उत्सव मनाने का आम रिवाज तो तुम्हें मालूम ही है कि सभी गाँवों–नगरों में सजावट की जाये, राजभवन व अन्य राजकीय भवनों पर रोशनी हो। सात दिन तक नृत्य–संगीत आदि हों और गरीबों को अन्न–वस्त्र आदि बांटे जायें।

दमयन्ती–आप जो उत्सव मनाने की सोच रहे हैं, उसे वास्तव में उत्सव नहीं कहा जायेगा, यह तो आँतरिक ह्रास हैं और पाँचों इन्द्रियों के विषयों का पोषण है। अतः उत्सव की प्रणाली में परिवर्तन कीजिये। यदि आप मेरे आने की खुशी में उत्सव ही मनाना चाहते हैं, तो इस प्रकार के कुछ कार्यक्रम रखे जायें कि जिनसे अनेक आत्माओं में आन्तरिक उल्लास जागृत हो और उल्लास का जागरण आत्मोत्थान के कार्य रखे जाने से ही हो सकता है। अतः जनसाधारण को आत्मजागृति का मार्ग समझाया जाये। यदि आप इस प्रकार के कार्यक्रम रखते हैं, तो मैं उसमें शामिल होने को तैयार नहीं हूँ और आप सिर्फ पाँचों इन्द्रियों का पोषण करने वाला उत्सव मनाना चाहते हैं, तो मैं उस उत्सव से उदास रहना चाहती हूँ।

दमयन्ती की भावना को सुनकर महाराज भीमरथ ने विचार किया कि जिसको निमित्त मानकर मैं उत्सव मनाने जा रहा हूँ और वही उसमें भाग न ले, तो वह फीका रहेगा। ऐसा सोचकर वे बोले–पुत्री! तुम्हारी भावना का मैं आदर करता हूँ, लेकिन जनसाधारण के उत्साह को ध्यान में रखते हुए भी उत्सव मनाते हैं, तो उसमें क्या हर्ज है? इससे तो लोगों का उत्साह ही बढ़ेगा।

दमयन्ती–पाँचों इन्द्रियों के विषयों का पोषण करने वाले कार्यों से आत्मिक शक्तियाँ कुंठित होगी, इसलिए इन विकारजनक प्रदर्शनों को बन्द करके नयी पद्धति चालू कीजिये, जो त्याग भावना से युक्त हों और अन्तर् की वृत्तियों का बोध करानेवाली हों।

भीमरथ–पुत्री, अभी गृहस्थावस्था में रहते हुए ऐसे उत्सवों में शामिल होने से क्यों इन्कार कर रही हो ? हाँ! संयम अंगीकार कर लेने के बाद की स्थिति दूसरी है।

दमयन्ती–पिताजी आपका कहना ठीक है। परन्तु आपको यह ज्ञात ही है कि अभी मेरे पतिदेव का पता नहीं है। जब तक वे सकुशल नहीं आ जाते, तब तक मैं गृहस्थावस्था में रहते हुए श्रृंगार भी नहीं करना चाहती हूँ, तो फिर इन्द्रियों को उत्तेजना देनेवाले उत्सव में कैसे शरीक हो सकती हूँ? अगर उत्सव मनाना ही चाहते हैं, तो त्याग–मार्ग का उत्सव मनाइए। मेरा पूरा योगदान रहेगा।

महाराज भीमरथ ने दमयन्ती की बातों पर गम्भीरता से विचार करके जब सभासदों, प्रजा के प्रमुख व्यक्तियों आदि को बताया, तो उन्होंने भी गम्भीरता से मनन करके निश्चय किया कि साप्ताहिक उत्सव में आत्मिक शुद्धि के कार्यों की प्रमुखता रहे और दान–शील–तप व भावना का प्रसार हो तथा आन्तरिक शक्ति को जगाने का लक्ष्य रखा जाये।

उत्सव का कार्यक्रम बनानेवाली समिति ने दमयन्ती से निवेदन किया–आपके निर्देशन में ही हम उत्सव का कार्यक्रम बनाना चाहते हैं। कृपया कार्यक्रम के बारे में विशेष रूप से जानकारी दीजिये, जिससे उसी के अनुसार उत्सव मनाया जाये।

दमयन्ती–अपनी भावनाओं को पवित्र रखने के लिए सबसे पहले दान देने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। दान देने से पवित्रता आती है और दान किसी का उपकार करने के लिए नहीं, किन्तु स्वयं अपना उपकार करने के लिए दिया जाता है। उससे

अन्तर् में ममत्वभाव का त्याग होने से आत्मिक शुद्धि होती है और पवित्रता सबल बनती है। इसके साथ ही व्रत, संयम आदि का पालन किया जाये, परन्तु मुख्य रूप से दान को ध्यान में रखा जाये।

आप लोग अपनी सम्पत्ति में से कुछ भाग निकालने का प्रयास करते ही होंगे, परन्तु मैं यही चाहती हूँ कि जितनी आमदनी हो, उसमें से कुछ हिस्सा धार्मिक कार्यों के लिए, जनहित के लिए, पारमार्थिक कार्यों के लिए अवश्य निकालना चाहिए। यदि पारमार्थिक कार्यों के लिए सम्पत्ति का कुछ भाग निकालने की प्रवृत्ति बनायी गयी, तो त्यागमार्ग की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

पिताजी से भी निवेदन करूंगी कि आत्मसाधना के लिए योग्य स्थान की व्यवस्था होना आवश्यक है। घरेलू कार्यों के लिए तो मकान बनाये जा सकते हैं, राज्य कार्यों के लिए भी कई भव्य भवन हैं, इनमें तो लौकिक कार्य ही किये जाते हैं। अतः मेरा सुझाव है कि एक बहुत बड़ा भवन धर्मसाधना के लिए समर्पित कर देना चाहिए, जिससे लोगों को धर्मसाधना करने का मौका मिलेगा।

दमयन्ती की भावना को सुनकर महाराज भीमरथ ने धार्मिक कार्यों के लिए एक बहुत बड़ा भवन देने की घोषणा करते हुए कहा–आज से यह भवन धार्मिक कार्यों के लिए सुपुर्द करता हूँ।

महाराज भीमरथ के कार्य की मुक्तकंठ से सराहना करते हुए प्रजाजनों ने सोचा कि जिनके पास मकानों की बहुतायत है, शायद वे अपनी आत्मिक साधना के लिए अवश्य स्थान निश्चित कर सकते हैं, लेकिन जिन भाई बहनों के लिए रहने का भी स्थान नहीं, उनके लिए तो यह उत्तम साधन हो गया है। महाराज के कार्य की जितनी भी प्रशंसा की जाये, उतनी कम है। साथ ही साथ वे दमयन्ती की भावना का आदर करते हुए सोचने लगे कि जिन आत्माओं को शक्ति प्राप्त होती है, वे अलौकिक प्रवृत्ति ही करती हैं। वे बोले–धार्मिक कार्यक्रम को रखने से उत्सव में एक अनोखापन आ जायेगा और हमें

आत्मिक शांति भी प्राप्त होगी। लेकिन हमारे मन में जिज्ञासा है कि पीहर छोड़ने के बाद आप ससुराल में रहीं और फिर वन में जाना पड़ा, तो वहाँ के अनुभवों को हम जानना चाहते हैं। कृपा कर हमारी उत्सुकता का समाधान करने के लिए अपना वृत्तांत सुनायें।

दमयन्ती उपस्थितजनों की इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए बोली–मेरे आत्मिक बन्धुओं ! मैं जीवन के बारे में क्या कुछ बताऊँ। मैंने इस छोटी–सी जिन्दगी में सुख–दुःख दोनों देखे हैं, दोनों का अनुभव किया है और उन अनुभवों से मैंने बहुत बड़ी शिक्षा ग्रहण की है। जब तक मैं राजभवन में रही, उस समय सोचती थी कि जीवन का यही सार है और इसी में आनन्द है, परन्तु अब सोचती हूँ कि मेरे वे विचार अज्ञान से परिपूर्ण थे। वह जीवन का सार नहीं था, वह तो जीवन का जंजाल था। मैं थोड़ा–सा भी कष्ट सहन नहीं कर पाती थी। जब तक मैं दूसरे अनुभव की स्थिति में नहीं पहुँची, तब तक भोग को ही श्रेयस्कर समझती रही। परन्तु जैसे ही उस स्थिति के छूटने का प्रसंग बना, तो मन को एक आघात लगा और सोचा कि मेरा सर्वस्व लुट गया है। सब भोगोपभोग की सामग्री छूट गयी है, यह कैसी विडम्बना है और उसके बाद जब राजभवन को छोड़कर जंगल में आये, तो वहाँ के अनुभव कुछ दूसरे ही थे। वे अनुभव विवेक को जागृत करने के साथ–साथ यथार्थ का बोध करानेवाले थे।

जंगल में रहते सुख–दुःख का तुलनात्मक दृष्टि से अनुभव करके मैं इस निर्णय पर पहुँची कि संकट के समय में इन्सान जागृत हो सकता है, किन्तु सुख में आत्मा की जागृति नहीं होती है। यदि इन्सान सुख–साधनों के बीच ही रहता है, तो वह जीवन के एक पक्ष को ही देखता है, वह जीवन के वास्तविक आनन्द को नहीं ले पाता है। इसलिए सच्चे जीवन का मर्म यही है कि सुख–दुःख में समभाव रख कर चलें। मैं वन में समभाव रख कर चलने लगी, तो वहाँ मुझे ऐसे आनन्द का अनुभव हुआ, जो राजभवन में नहीं हो रहा था।

मनुष्य यह सोचता है कि जिसको हमने सुख समझ रखा है, वह सदा कायम रहे, परन्तु यह नहीं सोच पाता है कि जब तक दुःख की घड़ियाँ नहीं आयेगी, तब तक सुख का स्वरूप भी समझ में नहीं आयेगा। क्षणिक सुख में प्रसन्न और क्षणिम दुःख विह्वल हो जाना, यह वास्तविक मनुष्य जीवन का स्वरूप नहीं है। संसार में अधिकांश प्राणी इस प्रकार का एकांगी दृष्टिकोण लेकर चलते हैं कि यदि कुछ दुःख आ रहा है, तो वे दुःख की भट्टी में जलने लगते हैं और सुख मिला, तो प्रसन्नता से फूले नहीं समाते हैं। वे यह नहीं सोचते हैं कि सुख और दुःख दोनों एक ओर चल रहे हैं, एक ही दिशा में उन दोनों की गति है और दोनों का समन्वय होने पर जीवन का वास्तविक शुद्ध स्वरूप प्राप्त किया जा सकता है।

बंधुओं! विद्यार्थियों को शालाओं में अक्षरज्ञान की कला सिखायी जाती है, लौकिक बातों का ज्ञान कराया जाता है, जो एकांगी दृष्टि का ज्ञान है। जिस व्यक्ति का जीवन सिर्फ पुस्तकों की पढ़ाई तक ही सीमित हो और उससे अनेक उपाधियाँ भी प्राप्त कर चुका हो, तो वह मस्तिष्क की कलाओं की उपलब्धि भले ही कर ले, परन्तु आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति नहीं कर सकता। इसी प्रकार चाहे कोई व्यापारी हो, बचपन से व्यापार में लगा हो और धनवान घर से सम्बन्धित रहा हो, तो व्यापार में भले ही होशियार हो जाये, परन्तु उसमें भी जीवन की कला नहीं आ सकती है। लेकिन इसके साथ जिसने आन्तरिक उपलब्धि प्राप्त करने की कला को सीख लिया है, वह अपने जीवन में सुख की घड़ियों और दुःख के थपेड़ों में समभाव रखता हुआ आत्मिक उपलब्धि प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है।

दमयन्ती के अनुभव से भरे विचारों को सुनकर सभी उपस्थित व्यक्ति गद्गद् हो गये और मन ही मन उसकी प्रशंसा करने लगे। कई विचारशील व्यक्ति कल्पना में डूब गये कि मानव को सुख और दुःख में समभाव रखना चाहिए। न तो सुख देखकर फूलना चाहिए और न दुःख देखकर घबराना चाहिए और जो समभाव की वृत्ति से

दोनों को देखने लगे, वह जीवन का कुछ तथ्य हासिल करता है और अपने जीवन में आन्तरिक शक्ति को संचित करने के साथ जैसा चाहता है, उसे वैसा विकसित कर लेता है।

महाराज भीमरथ भी इन सब विचारों को सुन रहे थे और कुछ सोचते हुए–से खड़े होकर बोले–सुपुत्री ! मैं तुम्हारी क्षमता पर प्रसन्न हूँ। तुमने इतने विकट प्रसंग पर भी अपने जीवन में धब्बा नहीं लगने दिया, माता के श्वेत दूध को तुमने चमकाया है, उसमें कालिमा, अपवित्रता नहीं आने दी। इसीलिए तुम्हें देखकर मेरा सीना फूल रहा है। मन में प्रसन्नता का पार नहीं है। तुम्हारी माता, जिसने तुम्हें दूध पिलाया, उसके उल्लास का तो ठिकाना ही नहीं हैं। तुम्हारे अनुभवों को सुनने से उसकी आँखों से मोती बरस रहे हैं।

तुमने अपने जीवन में शांति की प्राप्ति के लिए जो मार्ग अपना लिया है, वह बहुत ही प्रशंसनीय है। यही कारण है कि जहाँ हम लोग पाँचों इन्द्रियों के लुभावने दृश्यों का अनुभव करानेवाले उत्सव को मनाना चाहते थे, वहाँ तुम्हारी अन्तरात्मा ने उसे पसन्द नहीं किया और अपने अन्तर्नाद से कहा कि उत्सव ही मनाना है, तो धार्मिक प्रक्रिया से मनाया जाये। इस संकेत से ही मैंने तुम्हारे सारे जीवन का मूल्यांकन कर लिया कि तुम्हारी भावना कैसी है। व्यक्ति का दृष्टिकोण कैसा है, वह अपने अन्तर् में क्या देखता है, किस चीज को पसन्द करता है, यह देखने की क्षमता तो विशिष्ट ज्ञानियों में होती है, परन्तु साधारण व्यक्ति तो व्यक्ति के वचनों से, उसके व्यवहार से और आचरण से उसके अन्दर का अनुमान लगा सकता है। इन्हीं कसौटियों से मैं तुम्हें परख पाया हूँ कि तुम्हारा उच्चार यानि तुम्हारी बोली, तुम्हारा व्यवहार और तुम्हारी आन्तरिक भावना किस ओर तन्मय हो रही है। तुम धर्म–स्थान में रहती हुई धर्म की आराधना करो। दान, शील और तप जीवन को शांति देनेवाले हैं। इनसे ही आत्मा में शांति का संचार होता है। ये कल्पतरु के समान हैं। जो व्यक्ति अपने जीवन में दान, शील, तप व भावना को ढालकर चलता

है, तो वह व्यक्ति अंतर् और बाहर दोनों को साध सकता है। दान, शील, तप व भावना से भीतरी शुद्धि होती है और जो भीतरी शुद्धिकरण हेतु तत्पर होता है, उसकी आत्मा के शुद्ध होने से और कर्मों का क्षय हो जाने से बाहर की उपलब्धि सहज रूप से हो जाती है।

तुम किसी प्रकार की चिंता मत करो। तुम दोनों की खोज के लिए अनेक अनुचरों को भेजा गया था, परन्तु अभी तक नल महाराज का कहीं पता नहीं लगा है। सौभाग्य से नल महाराज भी मिलेंगे। जब मेरे अंतरायकर्म का क्षयोपशम होगा, पुण्य और सातावेदनीय का उदय होगा तो वे भी अवश्य मिलेंगे।

अपने विचारों को व्यक्त करने के बाद जब महाराज भीमरथ चुप हो गये, तब दमयन्ती विनम्रभाव से पिताजी के चरणों में नतमस्तक होकर बोली–पिताजी ! मैं चिंताओं से तो कोसों दूर हो गयी हूँ। यदि मैं चिंता की आग मैं जलती, तो आपके पास नहीं आ पाती। मैं इन चिंताओं का तो पहले ही परित्याग कर चुकी हूँ। मैं धर्म को सदैव अपने ध्यान में रखती हूँ। अरिहंत, सिद्ध, साधु और अरिहंत–भाषित धर्म, ये चार ही जीवन में शरणभूत हैं। इनका गुणयुक्त आध्यात्मिक पवित्र स्वरूप है, जिसका स्मरण करके जीवन में आनन्द का अनुभव करती हूँ। अतः आप मेरी ओर से निश्चिंत रहें और आपने जो कुछ भी कहा है, वह मेरे जीवन के लिए बहुत बड़े उपकार का प्रसंग है।

महाराज भीमरथ ने अपनी पुत्री के भावों को सुनकर सभी उपस्थित व्यक्तियों को सम्बोधित करते हुए कहा–अब प्रत्येक का कर्तव्य हो जाता है कि वह नल महाराज का पता लगाये। जो भी व्यक्ति इस कार्य में सहयोग देने की भावना रखता हो, वह अपना नाम बताये। उन्होंने दमयन्ती की खोज करने वाले ब्राह्मण का सम्मान करते हुए जागीर भेंट करने की घोषणा की और साथ–साथ यह भी

घोषित किया कि नल महाराज का पता लगाने वाले को आधा राज्य इनाम में दिया जायेगा।

महाराज भीमरथ के निर्णय को सुनकर सभी राज्यनिवासी लालायित हो उठे, उनके मन मचलने लगे कि यदि हम नल को खोज निकालें, तो आधा राज्य मिलेगा। अतः बहुत से व्यक्ति महाराज नल की खोज करने के लिए निकल पड़े। इस तरह सारे राज्य में एक ही वातावरण बना हुआ था, एक ही चर्चा थी कि महाराज नल का पता लगाने वाले व्यक्ति को आधा राज्य मिलेगा।

❖ ❖ ❖

महाराज नल की खोज

इन्हीं दिनों महाराज दधिपर्ण का एक चतुर दूत विभिन्न राज्यों की आन्तरिक स्थिति का पता लगाने के लिए घूम रहा था। दूत को विभिन्न राज्यों में जाकर वहाँ की व्यवस्था की जानकारी करने का काम सौंपा गया था कि कौन राजा अपने राज्य की कैसी व्यवस्था कर रहा है, उसका कैसा प्रभाव है? किसकी नीति जनता के लिए हितकारी है और किसकी अहितकारी? कौन इन्द्रियों के विषयों में लोलुप है और स्वार्थपूर्ति कर रहा है? किस राज्य की जनता सुख–चैन का अनुभव कर रही है और कहाँ किस चीज की विशेषता है?

दूत अपने राजा के निर्देशानुसार अनेक राज्यों में परिभ्रमण करने के बाद महाराज भीमरथ के राज्य में आया। वह राज्य की स्थिति का पता लगाता हुआ राजधानी कुंडिनपुर में आकर पनघट के पास बैठ गया।

पनघट पर बैठे–बैठे दूत स्त्रियों की बातें सुनने लगा। वे आपस में कह रही थीं कि दमयन्ती तो मिल गयी, लेकिन अभी तक महाराज नल का कहीं पता नहीं लगा है। उनका पता लगाने वाले को अपने महाराज ने आधा राज्य इनाम में देने की घोषणा की है।

पनघट पर नगर के वातावरण की जानकारी कर लेने के बाद दूत ने राजभवन में जाने का निश्चय किया। वह नगर में जानकारी करता हुआ राजभवन में पहुँचा और द्वारपाल से बोला–महाराज को

सूचना दो कि महाराज दधिपर्ण के यहाँ से दूत आया है और आपसे मिलने के लिए अन्दर आने की आज्ञा चाहता है।

दूत के आने की खबर सुनकर महाराज भीमरथ ने सत्कारपूर्वक दूत को अन्दर लाने के लिए द्वारपाल को आज्ञा दी।

राजसभा में पहुँचने पर सभासदों ने दूत का स्वागत किया और उसे आदरपूर्वक योग्य स्थान पर बैठाया। महाराज भीमरथ ने दूत से पूछा–महाराज दधिपर्ण तो प्रसन्न हैं?

दूत–हाँ राजन् ! सब प्रसन्न हैं।

भीमरथ–और कोई विशेष समाचार हो, तो सुनाइए।

दूत–आपकी क्षेम–कुशल जानने के लिए ही मुझे भेजा है। इधर कोई विशेष बात हो, तो बताइए।

भीमरथ–वैसे तो यहाँ सब कुशलता है, लेकिन आपने यह तो सुना ही होगा कि महाराज नल अपने राजपाट को छोड़कर दमयन्ती के साथ जंगल में चले गये थे। दमयन्ती तो अभी कुछ समय पहले मिल गयी है, लेकिन नल महाराज का अभी तक कोई पता नहीं लगा है। आप देश–देश में घूमते हुए यहाँ आये हैं। अगर कहीं उनके विषय में जानकारी मिली हो, तो बताइए। उनकी जानकारी देने वाले को मैंने आधा राज्य देने की घोषणा की है। दूत ने सोचा कि महाराज दधिपर्ण के यहाँ नल महाराज के विषय में जो कुछ सुना है, उसे यहाँ बताने से शायद कुछ पता मिल सकेगा और वह बोला–राजन! नल महाराज की ख्याति तो सारे संसार में फैली हुई है। उनका जीवन भी बड़ा यशस्वी रहा है। अभी कुछ समय से महाराज दधिपर्ण के यहाँ एक रसोइया आया है, जो नल महाराज की बड़ी प्रशंसा करता रहता है। उसने बताया कि महाराज नल बहुत ही विवेकी थे, परन्तु दुव्यर्सनी व्यक्तियों की संगति में फंस कर जुआ खेलने लगे, जिसका दुष्परिणाम बड़ा भयानक आया। महाराज नल के छोटे भाई कुबेर ने जुए में सारा राज्य जीतकर उन्हें राज्य से बाहर निकाल दिया।

रसोइए के मुँह से महाराज नल की कला का वर्णन सुना, तो मैं अवाक् रह गया। उसने बताया कि महाराज नल सूर्यपाक भोजन बनाने की कला जानते थे। उन्होंने किसी को भी अपनी यह कला नहीं सिखायी, परन्तु उनका मैं ही एक ऐसा अभिन्न सेवक था कि कृपा करके मुझे ही सूर्यपाक भोजन बनाने की कला सिखायी। महाराज दधिपर्ण के सामने उसने अपनी इस कला का प्रदर्शन भी किया। साथ–साथ उसने एक और विशिष्ट कार्य कर दिखाया कि एक पागल हाथी को बिना शस्त्र के वश में कर लिया, जिससे महाराज बहुत ही प्रसन्न हुए। वे उसे सम्मानपूर्वक अपने ही पास रखते हैं। राज्य में ऐसा प्रतिभा–सम्पन्न, चतुर व्यक्ति दूसरा नजर नहीं आ रहा है। उसकी चतुराई के सामने महाराज दधिपर्ण के यहाँ राजनीति में दक्ष जो प्रधान है, वे भी तुच्छ से मालूम होते हैं।

महाराज भीमरथ ने दूत की बातें बड़े गौर से सुनीं और सोचा कि नल महाराज की कला–प्रवीणता के बारे में हमें कुछ विशषे जानकारी नहीं है। दूत के द्वारा कही जाने वाली बातों से सम्भव है कि दमयन्ती कुछ बता सके। अतः सभा को समाप्त करके और दूत को साथ लेकर वे राजभवन में आये।

राजभवन में पहुँचकर महाराज भीमरथ ने दमयन्ती को बुलाने के लिए सेवक को भेजा।

पिताजी की आज्ञानुसार दमयन्ती उनके पास आयी और दूत को नमस्कार करके अपने योग्य स्थान पर बैठ गयी। महाराज भीमरथ ने दूत का परिचय देते हुए बताया–ये महाराज दधिपर्ण के दूत हैं और अनेक देशों में भ्रमण करते हुए यहाँ आये हैं। आपने नल महाराज के रसोईये के बारे में कुछ जानकारी दी है। वे दूत की ओर देखकर बोले–आपने जिस रसोइए का वर्णन किया है, यहाँ दमयन्ती के सामने भी उसकी शुरू से लेकर आखिर तक पूरी बात बताइए।

फिर दूत से सब वृत्तान्त सुनने के बाद महाराज भीमरथ ने

दमयन्ती की ओर देखकर कहा–जो कुछ बताया है, क्या यह तुम्हारी जानकारी में है?

दमयन्ती–सूर्यपाक भोजन बनाने की जहाँ तक बात है, उसको बनाने की कला आपके जमाता को ही आती थी, अन्य किसी को नहीं। रसोइया तो दूर रहा, मैं भी उसका पूरा मर्म नहीं पा सकी। दूत ने जो कुछ भी कहा है, उसकी पूरी जानकारी के लिए किसी चतुर व्यक्ति को वहाँ भेजना चाहिए।

दमयन्ती की बात सुनकर दूत बोला–मैंने जो कुछ देखा, वही बताया है। आप किसी चतुर व्यक्ति को भेजकर उसके बारे में हकीकत का पता लगाइए।

महाराज भीमरथ ने एक चतुर, विलक्षण बुद्धि वाले ब्राह्मण को महाराज दधिपर्ण की राजधानी में जाकर सब बातों का पता लगाने के लिए तैयार किया। उसको आवश्यक सब बातें समझा दी गयीं और वह अपने कार्य की सिद्धि के लिए महाराज दधिपर्ण की राजधानी में जा पहुँचा।

राजधानी में पहुँचकर ब्राह्मण नगरवासियों के विचारों को जानने के लिए इधर–उधर घूमता रहा। कभी वह बाजारों में पहुँच जाता था, तो कभी शाम को जुड़ने वाली मंडलियों में जा बैठता था। कभी पनघट पर, तो कभी तालाब आदि ऐसे सार्वजनिक स्थानों पर बैठता था कि जहाँ सभी तरह के व्यक्ति आते और गपशप करते थे। कभी वह किसी व्यक्ति से थोड़ी बहुत बात करके उसके भावों को समझने की कोशिश करता था। इस प्रकार कुछ दिनों में स्थिति को समझने के बाद उसने निश्चय किया कि रसोइये से मिलने के पहले महाराज दधिपर्ण से मिलना जरूरी है, क्योंकि जनता से मिली जानकारी के अनुसार वह महाराज का प्रेमपात्र बना हुआ है। बिना आज्ञा के रसोइये से मिलना राजनीति की दृष्टि से शंका की बात हो जायेगी और ऐसा सोचकर वह महाराज दधिपर्ण से मिलने के लिए राजसभा में पहुँचा।

राजसभा में पहुँचकर ब्राह्मण ने महाराज दधिपर्ण का अभिवादन करते हुए कहा–मैं महाराज भीमरथ की राजधानी से आया हूँ। आपके प्रधान जी बहुत ही विलक्षण और चतुर हैं कि सारी जनता में कुव्यसनों का त्याग करा दिया है। जुआ, गाँजा, चरस, भंग आदि–आदि जीवन को नष्ट करने वाली चीजों को त्याग कराके एक सुन्दर वातावरण बना दिया है। मैं उनको लाख–लाख धन्यवाद देता हूँ।

ब्राह्मण के मुख से इस प्रकार की प्रशंसा–भरी बातों को सुनकर महाराज दधिपर्ण बोले–यह हमारे मुख्य प्रधान जी का कार्य नहीं है, किन्तु नल महाराज के रसोइये का काम है। जब से वह राजधानी में आया है, तभी से राज्य की शोभा बढ़ी है। उसकी क्या प्रशंसा करूं? जो मदोन्मत्त हाथी सारे नगर को तहस–नहस करने पर उतारू हो गया था और जिसे बड़े–बड़े शूरवीर भी वश में नहीं कर सके थे, उसे नल महाराज के रसोइये ने अपनी कला से बिना अस्त्र–शस्त्र के वश में कर लिया। अपनी घोषणा के अनुसार जब मैंने इसे इनाम देना चाहा, तो वह इतना निर्लोभी निकला कि कुछ भी नहीं लिया और नल महाराज के अनुभव सुनाते हुए उसने जनता में से कुव्यसन हटाये जाने की मांग की कि कोई जुआ न खेले, नशा न करे। इस प्रकार जनता में से दुर्व्यसनों के हटाने का श्रेय उसको है। वह विद्वान है, कलावान है, राजनीति का जानकार है और उसमें धार्मिक संस्कार भी भरे हुए हैं। राजनीति का जानकार होते हुए भी वह कूटनीतिज्ञ नहीं है। उसकी सलाह देने की कला से मैं बहुत ही प्रभावित हूँ।

दूत–आपकी अनुमति हो, तो मैं आपके इस रसोइए से मिलना चाहता हूँ।

दधिपर्ण–आप आनन्द से मिल सकते हैं।

महाराज दधिपर्ण की आज्ञा लेकर दूत रसोइये के मकान पर आया और द्वारपाल से अन्दर जाने की आज्ञा मांगी।

द्वारपाल से आज्ञा पाकर वह चतुर दूत अन्दर पहुँचा और कुबड़े व्यक्ति को देखकर आश्चर्य में पड़ गया। उसने पूछा–मैं नल महाराज के रसोइये से मिलना चाहता हूँ। वे कहाँ हैं?

कुबड़ा–कहिए !

दूत–उनसे मिलना चाहता हूँ।

कुबड़ा–उनसे मिलने के पहले मुझसे ही बात कर लीजिए और फिर बात का सिलसिला चालू करते उसने कहा–भाई ! आप महाराज नल के रसोइये से बात करना चाहते हैं, परन्तु पहले यह तो बताएँ कि आप कहाँ से आ रहे हैं और किस प्रयोजन से मिलना चाहते हैं?

कुबड़े की बात सुनकर दूत को कुछ क्रोध–सा आ गया, लेकिन रोष को दबाते हुए वह बोला–देखिए भाई! ये सब बातें आप मत पूछिए कि मैं कहाँ से आया हूँ और किसलिए आया हूँ। कृपा कर आप मुझे मिला दीजिए।

कुबड़ा–कुछ बात तो बताओ।

दूत–तुमको बताने से क्या हासिल होने वाला है ? मैं उनसे मिलकर यह जानकारी करना चाहता हूँ कि जंगल में उस पवित्र नारी को छोड़कर वे कहाँ चले गये? ऐसा करके उन्होंने बहुत बड़ी निर्दयता दिखायी है।

आने वाले व्यक्ति के मुँह से ऐसे शब्दों को सुनकर कुबड़े का मन संतप्त हो उठा और इतनी आन्तरिक वेदना हुई कि पहले की सभी घटनाएँ मस्तिष्क में घूम गयी, पश्चात्ताप से रोम–रोम तप गया, भावों के उतार–चढ़ाव से चेहरे का रंग भी बदलने लगा और आँखे डबडबा आयीं, परन्तु उसने सहसा यह सोचकर अपने को सम्भाल लिया कि इसको कुछ पता न लग जाये कि यही नल है। अतः वह स्वस्थ–सा होकर बोला–ऐसे दुष्ट व्यक्ति का तो मुँह भी नहीं देखना चाहिए। सती के विषय में भी तो बताओ, उसका क्या हुआ?

दूत–वह धैर्य और शांति से जंगल में अपने जीवन को सम्भालते हुए, अनेक कष्टों को सहते–सहते, कभी किसी की सहायता से, तो कभी किसी के सहयोग से देश–देश में घूमती हुई अब अपने पिता के पास पहुँच गयी है।

दमयन्ती के सकुशल पिता के घर पहुँचने की बात को सुनकर कुबड़ा अपने मन में गद्गद् हो गया और बोला–भाई! नल महाराज जैसे व्यक्ति के लिए ऐसा करना शोभाजनक नहीं था।

दूत–इसीलिए तो मैं नल महाराज के रसोइए से मिलकर बात की पूरी जानकारी करना चाहता हूँ।

कुबड़ा–मैं ही तो नल महाराज का रसोइया हूँ।

कुछ देर तक गौर से कुबड़े की ओर देखने के बाद दूत ने कहा–तुम नल महाराज के रसोइये हो? और कुबड़े के पास से दूर हटकर ललाट पर हाथ रखकर सोचने लगा कि कहाँ चांद और कहाँ अन्धेरा, कहाँ पर्वत ओर कहाँ राई, कहाँ सूर्य और कहाँ जुगनू? यह कहता है कि मैं नल महाराज का रसोइया हूँ, क्या दमयन्ती ने इसी के लिए कहा था कि रसोइया नल महाराज ही होना चाहिए। इतनी चतुर होकर वह कैसे भ्रमित हो गयी? कहाँ तो दिव्य शरीर वाले नल महाराज और कहाँ तवे के पेंदे के रंग जैसा यह कुबड़ा।

दमयन्ती भी कैसी है कि जहाँ जरा–सा नल महाराज का नाम आया कि ताना–बाना बुनकर महल बना बैठी और नल महाराज की जानकारी के लिए मुझे यहाँ भेज दिया। इतनी देर तो जिज्ञासा थी कि नल महाराज के रसोइये से मिलूंगा, परन्तु अब मालूम हुआ कि यह रसोइया वगैरह कुछ नहीं है।

कुबड़े के रूप में बैठे महाराज नल भी सोचने लगे कि यह बात करते–करते रुक क्यों गया? यह तो रूपरंग देखकर ही ललाट पर हाथ रख कर सोच रहा है। इसको कैसे समझाया जाये? वे बोले–आप क्या सोच रहे हैं? मैं सूर्यपाक भोजन बनाना जानता हूँ।

आप भोजन करेंगे, तो सब पता लग जायेगा कि मैं नल महाराज का रसोइया हूँ या नहीं। मेरे इस ऊबड़–खाबड़ शरीर को देखकर ही आप शायद दूसरी कल्पनाएँ कर रहे हैं। आराम से थोड़ा बैठिये और भोजन करके ही आप यहाँ से पधारें।

भोजन तैयार करने के बाद कुबड़े ने इस व्यक्ति से भोजन करने के लिए कहा। भोजन करते–करते वह मंत्रमुग्ध–सा होकर सोचने लगा कि ऐसा भोजन तो मैंने पहले कभी नहीं खाया है। दमयन्ती ने भी कहा था कि मेरे पतिदेव जैसी रसोई बनाते हैं, वैसी इस भूमण्डल पर दूसरा कोई नहीं बना सकता है। हो सकता है कि महाराज नल ने दया करके अपनी कला इस कुबड़े को भी बता दी हो। भोजन करने के बाद वह बोला–क्या नल महाराज ऐसा सूर्यपाक भोजन बनाते थे?

कुबड़ा–हाँ, वे ऐसा ही बनाते थे। फिर वह अपने मन में सोचने लगा कि ऐसा शुभ संदेश देने वाले को मुझे इनाम तो देना ही चाहिए। ऐसा सोचकर समय–समय पर दधिपर्ण से मिले आभूषण आदि को बाहर निकालकर दूत के सामने रखते हुए बोला–आप इन्हें ले जाइए। मैं आपको यह सब भेंट में देता हूँ।

इन बहुमूल्य आभूषणों आदि को देखकर दूत आश्चर्य करने लगा और बोला–अरे भाई! इतने बहुमूल्य आभूषण आदि आपको कहाँ से मिले हैं?

कुबड़ा–ये सब आभूषण महाराज दधिपर्ण से इनाम में मिले हैं। नल महाराज की कृपादृष्टि से मैंने जो कला सीखी थी, उसी का फल है। नल महाराज के पास रहकर मैंने सिर्फ रसोई बनाना ही नहीं सीखा है, किन्तु राजनीति और राज्य–संचालन की कला भी उनसे सीखी है। यही कारण है कि मैं महाराज दधिपर्ण का प्रिय पात्र बन गया, जिससे वे समय–समय पर मुझे इनाम देते रहते हैं। आपने दमयन्ती के विषय में जो शुभ संदेश दिया, उसी के लिए आपको ये आभूषण आदि भेंट में दे रहा हूँ। आप इन्हें स्वीकार कीजिए।

दूत बड़े गौर से कुबड़े की ओर देखने लगा कि यह क्या बात है? इसमें इतनी उदारता कहाँ से आयी? यह तो ऐसी उदारता दिखा रहा है कि मानो कोई राजा हो। यह एक रहस्यमय पहेली बन गया है।

कुछ देर तक कुबड़े से इधर–उधर की बातचीत करने के बाद दूत ने सोचा कि अब मुझे यहाँ विशेष नहीं ठहरना चाहिए। महाराज भीमरथ मेरा इन्तजार कर रहे होंगे, दमयन्ती व महारानी जी भी हकीकत जानने के लिए उत्सुक होंगी। अतः महाराज दधिपर्ण से आज्ञा लेकर वह कुंडिनपुर के लिए रवाना हो गया।

महाराज भीमरथ को जैसे ही अपने भेजे ब्राह्मण के आने के समाचार मिले तो तत्काल उसे अपने पास बुलाया। दमयन्ती और महारानी भी महाराज के पास आ गयी और जैसे ही ब्राह्मण राजभवन में आया, तो महाराज भीमरथ ने पूछा–क्या समाचार लेकर आये हो? नल महाराज का क्या कुछ पता मिला?

महाराज के संकेतानुसार ब्राह्मण ने जानकारी देते हुए कहा–मैं यहाँ से रवाना होकर महाराज दधिपर्ण की राजधानी में पहुँचा। कुछ दिनों तक तो मैं गुप्त वेश में रहकर सारे नगर में घूमता रहा। कभी पनघट पर चला जाता, तो कभी तालाबों, बाग–बगीचों में जाकर वहाँ पर आने वाले स्त्री–पुरुषों की बातचीत सुना करता। बाजारों में आकर व्यापारियों की भावना को समझता और सुबह–शाम गलियों में घूम–घूमकर नगरवासियों के विचारों को जानता। इस वातावरण से मुझे ऐसा आभास हुआ कि एक परदेशी व्यक्ति जबसे यहाँ आया है, तब से जनता में कुव्यसनों का सेवन राजाज्ञा से बन्द हो गया है। उसने एक पागल हाथी को वश में किया था, जिससे महाराज ने खुश होकर पाँच सौ गाँव उसे जागीर में देने चाहे, लेकिन उसने नहीं लिये, सारे राज्य में कुव्यसनों का प्रचार–प्रसार रोकने की मांग की। वह इतना बुद्धिमान और राजनीति का जानकार है कि आजकल महाराज दधिपर्ण उसी की सलाह से राज्य– व्यवस्था करते हैं।

जनता के विचारों को जानने के बाद अपना वेश बदल कर दूत के रूप में मैं महाराज दधिपर्ण की राजसभा में पहुँचा और अपना परिचय दिया। उन्होंने आपकी कुशलता के समाचार पूछे, तो मैंने बताया कि और तो सब ठीक है, लेकिन नल महाराज जुए में अपना राज्य हारकर दमयन्ती के साथ वन में चले गये थे। दमयन्ती तो मिल गयी है, लेकिन नल महाराज का पता नहीं लग सका है। देश–विदेश में खोजने के लिए आदमी भी भेजे हैं, लेकिन अभी तक कोई सफलता नहीं मिली है। सुना है कि आपके यहाँ कोई नल महाराज का रसोइया रहता है। शायद उसके कुछ पता लग जाये। आपकी आज्ञा हो, तो मैं उससे मिलू लूं।

महाराज दधिपर्ण की आज्ञा लेकर नल महाराज के रसोइये के मकान पर पहुँचा। द्वारपाल से आज्ञा लेकर अन्दर गया, तो देखा कि एक काला–कलूटा कुबड़ा बैठा है। उससे इधर–उधर की बातें होती रहीं और जब मैंने कहा कि मुझे नल महाराज के रसोइये से मिलना है, तो वह बोला कि मुझे ही उनका रसोइया समझ लो और जैसे ही राजकुमारी जी का नाम आया, तो बातें करते–करते उनका गला रुंध ा गया, आँखें भी डबडबा आयीं और चेहरे के भाव भी बदल गये, लेकिन क्षण भर में अपने भावों को दबाकर वह आगे बातें करने लगा।

भोजन करने के बाद भी कुछ देर बातचीत होती रही। उस बातचीत में उसकी दमयन्ती के बारे में जानकारी करने की उत्सुकता देखी और अन्त में उसने कहा कि आपने बहुत ही शुभ समाचार सुनाये हैं। अतः मेरी तरफ से यह भेंट स्वीकार कीजिये।

कुबड़े से बातचीत करने के बाद महाराज दधिपर्ण के पास आया और बताया कि नल महाराज के बारे में उससे कुछ विशेष जानकारी नहीं मिली है। अब आप मुझे जाने की आज्ञा दीजिये और आज्ञा पाकर मैं वहाँ से रवाना हो गया।

ब्राह्मण की बात सब एकाग्र होकर चुपचाप सुन रहे थे। बात पूरी होने पर दमयन्ती ने निवेदन किया–पिताजी! हाथी को वश में

करने की कला भी वे जानते थे। इनाम में मिली चीजों को पुनः भेंट कर देना यह भी उनकी उदारता का परिचय देता है। यदि वह कोई साधारण व्यक्ति होता, तो वह सब नहीं कर पाता। कुबड़ापन और काले रंग को छोड़कर बाकी जितना भी वृत्तांत सुना है, वह सब मेरे पतिदेव से मिलता है। इस रहस्य को समझने के लिए पूरा पता लगाने की आवश्यकता है।

महाराज भीमरथ और महारानी ने सोचा कि इन सब बातों के बारे में गम्भीरता से विचार करने की जरूरत है। ब्राह्मण को जाने की आज्ञा देकर वे राजभवन में चले आये।

महाराज भीमरथ ने उस सुने हुए वृत्तांत पर काफी चिन्तन–मनन किया और अपने हितैषी बंधु–बांधवों से भी इसकी चर्चा की, लेकिन वे कुछ निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि आगे हमें क्या करना चाहिए?

प्रातःकाल अपने नित्य–नियम से निवृत्त होकर दमयन्ती पिताजी के चरणों में नमस्कार करने को पहुँची और नमस्कार करके नम्र भाव से निवेदन करते हुए बोली–आपने सोचा ही होगा कि महाराज दधिपर्ण के यहाँ जो रसोइया है, दरअसल वह कौन है? उनके पास इस तरह की कला जानने वाला नहीं था। आपके जामाता कई कलाओं से सम्पन्न हैं, लेकिन अपने शरीर का रूप–रंग बदल सकें, ऐसी कला जब तक वे मेरे साथ थे, तब तक मैंने नहीं देखी। सम्भव है, वन में वे किसी योगी के पास रहे हों और योग–साधना से इस शक्ति को प्राप्त कर लिया हो। वन में मेरे साथ रहते हुए कहा करते थे कि देखो! यहाँ कैसी शांति मिल रही है। यदि अकेला होता, तो योग–साधना में लग जाता। सम्भव है अकेले रह जाने के बाद योग–साधना की हो और आन्तरिक शक्ति से ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली हो, जिससे शरीर का रूप बदल सके। उन्होंने अपने आपको छिपाने या शक्ति को गुप्त रखने के लिए ही शायद वह कला प्राप्त की हो। इसलिए उनको यहाँ बुलाने का उपाय कीजिये।

दमयन्ती की बात को सुनकर महाराज भीमरथ के मन में आशा की एक किरण झलक उठी। उन्होंने सोचा कि पुत्री के विचारों में आत्मशक्ति का पुट है। उसका सोचना सही दिशा में है। परन्तु उन्हें यहाँ कैसे बुलाया जाये? बुलाने के लिए क्या उपाय किया जाये? दूसरी बात यह है कि वे महाराज नल के विरोधी भी रहे हैं। दमयन्ती के स्वयंवर में दधिपर्ण भी आये थे और जब नल के गले में वरमाला डाली, तो वे उत्तेजित होकर संघर्ष करने पर उतारू हो गये थे। उस समय के संस्कार भी उनके मन में बैठे हुए हों और महाराज नल के प्रति भी शायद उनकी वही भावना हो। दमयन्ती तो कह रही थी कि वे महाराज नल हैं, परन्तु उनको बुलाया कैसे जाये? दमयन्ती की ओर देखकर वे बोले—तुम्हारा सोचना सही है, लेकिन कोई ऐसा उपाय बताओ कि जिससे उस रसोइये को यहाँ बुलाया जा सके।

पिताजी की बात सुनकर दमयन्ती विचार करने के लिए साधनागृह में चली गयी।

❖ ❖ ❖

दूसरे स्वयंवर का विचार

महाराज भीमरथ के मन में अनेक विचार आते रहे और निश्चय की स्थिति पर न पहुँचने के कारण अपने साथियों, प्रधानजी आदि को बुलाकर उन्होंने कहा–ऐसा कौन–सा उपाय हो सकता है, जिससे महाराज दधिपर्ण के पास रहने वाला रसोइया यहाँ आ सके?

इस समस्या पर सभी अपनी–अपनी दृष्टि से विचार करने लगे और अन्त में सभी ने राजसभा में एकत्रित होकर अपने–अपने विचार एक–दूसरे के सामने रखे। लेकिन कोई एक निश्चय पर नहीं पहुँच पा रहे थे। उन्हीं सभासदों के बीच बैठे हुए एक व्यक्ति ने कहा–महाराज! धृष्टता के लिए मुझे क्षमा करें। हमारी सब की यह इच्छा है कि रसोइये को यहाँ बुलाया जाये, क्योंकि राजकुमारी को ऐसा आभास हो रहा है कि छद्मवेश में वह रसोइया ही नल महाराज हो सकते हैं। अतः कूटनीति का सहारा लेकर हमें महाराज दधिपर्ण के यहाँ यह खबर भेजनी चाहिए कि दमयन्ती के पुनः स्वयंवर की इच्छा है, अतः आप पधारें।

इस बात को सुनकर दूसरे सभासदों ने कहा–पुनः स्वयंवर की घोषणा कैसे हो सकती है? क्या दमयन्ती इस बात को पसन्द करेगी?

इस बात को सुनकर सुझाव देने वाले ने कहा–हम वास्तव में दमयन्ती का स्वयंवर नहीं रख रहे हैं। हमें तो महाराज दधिपर्ण को निमन्त्रण देकर उस रसोइये को साथ बुलाना है।

इस प्रस्ताव को लगभग सभी ने पसन्द कर लिया कि इस उपाय से कुछ न कुछ कामयाबी मिलने की सम्भावना है, परन्तु मुख्य प्रश्न दमयन्ती की इच्छा का है और दमयन्ती के विचारों को जानने की जिम्मेदारी महाराज तथा प्रधानजी पर डाल देनी चाहिए कि वे उसके मनोभावों को जानें।

सभा समाप्त होने के बाद महाराज भीमरथ ने अपने साथियों के साथ हुए विचार–विमर्श व निश्चय को बतलाने के लिए दमयन्ती को बुलाया। महारानी और प्रधानजी भी पास में बैठे हुए थे।

दमयन्ती के आने पर सभा में हुए वार्तालाप और सुझावों के बारे में उसे बतलाया गया और जब दूसरे स्वयंवर की बात सुनी, तो वह चौंक पड़ी और बोली–यह नहीं हो सकता। ऐसा कदापि नहीं कर सकती।

दमयन्ती की बात को सुनकर प्रधानजी बोले–राजकुमारी ! स्वयंवर करने का विचार तो इसलिए रखा जा रहा है कि दधिपर्ण महाराज के पास जो व्यक्ति रसोइये के रूप में रह रहा है, वह अगर महाराज नल है, तो अवश्य ही आयेगा। यहाँ आने पर हम अपनी भावना के अनुसार उसका सब तरह से परीक्षण कर सकेंगे।

दमयन्ती–आप जिस भावना के साथ सोच रहे हैं, तो उस पर मेरा सुझाव है कि आप सिर्फ महाराज दधिपर्ण को ही बुलाइये और उनको इतने कम समय की सूचना दीजिये कि जिससे सामान्य तौर पर उतने समय में यहाँ पहुँचना सम्भव नहीं हो। मेरे पतिदेव अश्वविद्या जानते हैं और महाराज दधिपर्ण को लेकर वे निश्चित समय पर पहुँच जाते हैं, तो समझना चाहिए कि वे मेरे पतिदेव हैं।

दमयन्ती की बात सुनकर महाराज भीमरथ, महारानी और प्रधान जी पूरी तरह से संतुष्ट हुए और उसकी बुद्धि की सराहना करते हुए आपस में विचार करने लगे कि किस व्यक्ति को भेजा जाये, जो शीघ्र ही महाराज दधिपर्ण की सेवा में पहुँच कर निडरता के साथ गम्भीरता पूर्वक अपने भावों को प्रगट कर सके।

महाराज ने पुनः विचारवान व्यक्तियों को एकत्रित किया और उनके सामने दमयन्ती के विचार रखे। वे बोले–अब ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है, जो अत्यन्त चतुर हो और अपने भावों को महाराज दधिपर्ण के सामने ठीक तरह से रख सके।

सभी ने विचार कर अपने में से एक अत्यन्त चतुर व्यक्ति को महाराज दधिपर्ण के पास भेजने का निश्चय किया और महाराज भीमरथ ने अपने विचार बतलाते हुए उससे कहा–यहाँ जो चर्चा हुई है, दमयन्ती के जो विचार हैं, उसका आपको ध्यान ही है। इन विचारों को ध्यान में रखते हुए अपने बुद्धि–कौशल से महाराज दधिपर्ण को स्वयंवर में आने के लिए बहुत ही कम समय का निमंत्रण देना है और किसी भी स्थिति में वचनबद्ध नहीं होना है।

महाराज भीमरथ के विचारों को पूरी तरह से समझकर वह व्यक्ति महाराज दधिपर्ण की राजधानी की ओर चल दिया। वहाँ पहुँचकर नगर के बीचोंबीच होता हुआ राजभवन के द्वार पर आकर द्वारपाल से बोला–मैं महाराज भीमरथ का दूत हूँ। यदि आपके स्वामी आज्ञा दें, तो मैं राजसभा में उपस्थित होकर कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

राजसभा में जाकर द्वारपाल ने महाराज भीमरथ के दूत के आने की सूचना दी। दूत के आने की बात सुनकर महाराज दधिपर्ण ने उसे आदर सहित अन्दर लाने की आज्ञा दे दी और साथ ही साथ सोचने लगे कि महाराज भीमरथ का दूत बार–बार किसलिए आता है? मैं दमयन्ती के स्वयंवर के प्रसंग पर वहाँ गया था और वहाँ मैंने महाराज नल के विरोध में आवाज उठायी थी तथा संघर्ष भी छेड़ दिया था, लेकिन सब राजाओं के एकमत हो जाने से मुझे परास्त होना पड़ा था। सम्भवतः इसी बात का बदला लेने के लिए महाराज भीमरथ ने कोई षड़यन्त्र रचा हो। उन्होंने सभासदों को अपने अपने कार्य को बन्द करने का आदेश देते हुए कहा–महाराज भीमरथ का दूत आ रहा है, तो उसकी बात को सुनना है।

राजा की आज्ञा से चालू काम बन्द करके सभी सभासद मौन होकर प्रवेशद्वार की ओर देखने लगे। दूत ने सभा में आकर विधिपूर्वक महाराज दधिर्पण का अभिवादन करते हुए कहा–जय हो, विजय हो, मैं महाराज भीमरथ का दूत हूँ और यहाँ आपको निमन्त्रण देने के लिए आया हूँ।

जब तक निमन्त्रण देने की बात दूत के मुँह से नहीं निकली थी, तब तक सभा में बैठे सभी व्यक्तियों के मनों में उथल–पुथल मची रही और जैसे ही निमन्त्रण की बात सुनी, तो सभी ने शांति की सांस ली और जिज्ञासा पैदा हो गयी कि यह कैसा निमन्त्रण देने के लिए आया है ?

दूत ने निमन्त्रण पत्र सामने रखते हुए निवेदन किया–राजन्! हमारे स्वामी के सामने एक बहुत बड़ी जटिल समस्या आ गयी है। उनके जामाता महाराज नल कहाँ हैं? उनका कोई पता नहीं है। उनको प्रगट करने वाले के लिए उन्होंने अपने राज्य का आधा हिस्सा देने का संकल्प किया है। फिर भी कोई पता नहीं लगा पा रहा है। ऐसी स्थिति में दमयन्ती ने पुनः स्वयंवर का आयोजन करने का विचार किया है और मैं उसी का निमन्त्रण देने के लिए आया हूँ। आप इस निमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार करें तथा यथाशीघ्र स्वयंवर के समय पर आने की कृपा करें।

दूत के मुँह से दमयन्ती के स्वयंवर की बात को सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो गये कि यह क्या कह रहा है? और वहीं पास में बैठा महाराज दधिपर्ण का रसोइया कुबड़ा तो एकदम उदास हो गया कि क्या दमयन्ती मेरी धर्मपत्नी, धर्मप्रिया पुनः विवाह करने जा रही है? क्या उसके लिए स्वयंवर की रचना होगी? क्या वह वैदर्भी अपने जीवन में लांछन लगायेगी? उसके मन में इतनी उथल–पुथल मच गयी कि जिसकी सीमा नहीं रही। सारी सभा में सन्नाटा छा गया। यकायक महाराज दधिपर्ण के मन में पूर्व की स्मृतियाँ जाग उठीं और

वे सोचने लगे कि उस वक्त स्वयंवर में मैंने जो कुछ कहा था, वह सत्य हो रहा है कि नल कायर है, बुजदिल है। इसके गले में वरमाला डालकर दमयन्ती ने भूल की है। उस समय तो भीमरथ अभिमान में आ गये थे और सारे राजाओं के एकमत हो जाने से मेरी बात को नैतिकता के विरुद्ध समझा था, लेकिन मालूम होता है कि अब सद्बुद्धि आयी है।

दधिपर्ण का दमयन्ती के प्रति पहले से ही अनुराग था, परन्तु नल के गले में वरमाला डाल देने से वे संस्कार दब गये थे, जो दूत की बात सुनकर पल्लवित हो उठे और सोचने लगे कि क्या दमयन्ती पुनः स्वयंवर करेगी? मेरा खयाल है कि भीमरथ ने गलती मंजूर कर ली है, तभी तो मुझे निमन्त्रण भेजा है।

दूत भी चतुर था। वह दधिपर्ण के चेहरे के भावों को मन ही मन पढ़ रहा था। उसने सोचा कि इनके मन में तिथि जानने को उत्कंठा है और अनुकूल अवसर देखकर तिथि के बारे में संकेत करते हुए बोला–चैत्र शुक्ला पंचमी।

दूत के मुख से स्वयंवर की तिथि सुनकर दधिपर्ण का जोश ठंडा पड़ गया और वे साचने लगे कि इतनी नजदीक तिथि पर कैसे पहुँचा जा सकता है? इसमें तो कुछ छल ही दिखता है।

दूत ने सभासदों की ओर नजर डाली, तो उसने अनुभव किया कि उनके चेहरों पर भी उतार–चढ़ाव आ रहे हैं और नल महाराज के रसोइये का चेहरा भी गमगीन बना हुआ है। चेहरे पर प्रसन्नता नहीं है। ऐसी स्थिति में दूत ने ज्यादा बात करना उचित नहीं समझकर थोड़े से शब्दों में अपनी बात को समाप्त करने के लिहाज से कहा–राजन् ! मैंने निमन्त्रण दे ही दिया है और तिथि भी बतला दी है, आप जल्दी से जल्दी पहुँचने की कृपा करें। फिर वह योग्य शिष्टाचार का प्रदर्शन करके राजसभा से बाहर निकल आया।

महाराज दधिपर्ण दूत की बातें सुनकर उलझन में पड़े–पड़े

सोचते हुए सभासदों की ओर देखकर बोले–अब क्या करना चाहिए? कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

सभासद–इतने कम समय में वहाँ पहुँचने का कोई रास्ता ही नहीं दिखता है।

महाराज दधिपूर्ण प्रत्येक कार्य करने के लिए सभासदों से परामर्श करने के बाद नल महाराज के रसोइये से भी परामर्श करते थे। उन्होंने सोचा कि यह दीर्घद्रष्टा है, बुद्धिशाली है, बड़ा चतुर है और इसके राजा की पत्नी का पुनः स्वयंवर होने जा रहा है, अतः इससे एकांत में बात करनी चाहिए। मैं इसकी सलाह से जो भी काम करता हूँ, तो उसमें सफलता ही मिलती है। सभासदों के चले जाने पर दधिपर्ण ने इशारा करके नल महाराज के रसोइये को रोक लिया और दोनों एकांत में बैठ गये।

महाराज दधिपर्ण ने बात शुरु करते हुए कहा–आपके स्वामी का पता नहीं है और दमयन्ती का पुनः स्वयंवर होने जा रहा है, तो अपने को क्या करना चाहिए? इतने कम समय में वहाँ कैसे पहुँचा जा सकता है?

कुबड़ा–महाराज! इस पर जरा गम्भीरता से विचार करना पड़ेगा। विचार करने के बाद आपको पक्की राय दूंगा, जो आपके लिए ठीक रहेगी।

दधिपर्ण–आप ज्यादा देरी न करें। इसके बारे में जल्दी से जल्दी विचार करके मुझे राय दे दें, जिससे आगे कार्य करने में सुविधा हो।

महाराज दधिपर्ण को सलाह देने के पहले छद्मवेशी महाराज नल को इस बात का बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि क्या दमयन्ती स्वयंवर के लिए तैयार हो गयी है?

भावना में बहते–बहते नल सोचने लगे कि क्या दमयन्ती अपने मन के आवेग को नहीं रोक पायी? मेरे सामने तो वह बड़ी

ऊँची–ऊँची बातें करती थी कि राजन्! स्त्री अपने आपमें इतनी सक्षम है कि वह अपने आवेगों को रोककर जन–कल्याण के कार्यों को कर सकती है। वन में उसने समय–समय पर जो बातें कही थीं, वे बातें क्या आज की दमयन्ती में नहीं रहीं? क्या वह काम के आवेग में बह गयी? जीवन में क्या कुछ नहीं हो सकता? काम की महिमा क्या–क्या नहीं करा देती है? कुछ भी हो, परन्तु जहाँ तक मैं सोचता हूँ कि कोई भी पतिव्रता नारी जब तक पति मौजूद है, तब तक ऐसा विचार नहीं कर सकती है और जो ऐसा विचार करती है, तो उसके पतिव्रता धर्म में दोष लगता है। क्या इसी दोष से दमयन्ती भी लिप्त हो रही है? हो सकता है कि दुनिया के अन्दर कई तरह की परिस्थितियाँ बनती हैं, बड़े–बड़े योगी योगसाधना के लिए गुफा में जाकर बैठते हैं और कभी–कभी अन्तर् का आवेग उन्हें धक्का देता है और योग से भ्रष्ट कर देता है।

मैंने जो कुछ किया, इसका दुष्परिणाम मुझे भोगना पड़ रहा है। साथ ही साथ दमयन्ती को भी भोगना पड़ रहा है। विश्वास तो नहीं होता कि दमयन्ती दूसरे स्वयंवर के लिए सोचे। क्या मेरे मौजूद रहते दमयन्ती दूसरे वर का वरण कर सकती है? ऐसा कभी नहीं हो सकता है। मणिधर नाग जब तक जिन्दा है, तब तक उसके फण से मणि को कोई नहीं ले सकता है। इसी तरह जब तक मैं जिन्दा हूँ, तब तक दमयन्ती को कोई नहीं वर सकता है।

इस प्रकार सोचते–सोचते महाराज नल के मन में विचार आया कि क्या दधिपूर्ण महाराज को कह दूं कि मैं नल हूँ? नहीं, नहीं। अभी मुझे कुछ नहीं कहना चाहिए, परन्तु इस अवसर पर जाना अवश्य है। मैं जाऊँगा, तो सारा तमाशा देख लूंगा और मन में कुछ निश्चय–सा करते हुए वे महाराज दधिपर्ण के पास आकर मुस्कराते हुए उनकी ओर देखने लगे।महाराज दधिपर्ण कुबड़े को मुस्कराते देखकर बोले–कहिए, आपने क्या विचार किया?

कुबड़ा–महाराज मैं तो यही सोच रहा हूँ कि आप सरीखे शक्ति–सम्पन्न राजाओं को स्वयंवर का निमन्त्रण मिले, तो उसमें उपस्थित होना नितांत जरूरी है। जो वास्तविक क्षत्रिय वीर हैं और जिनमें शक्ति है, वे तो ऐसे कार्यों में अपनी शक्ति ही दिखाते हैं, कभी पीछे नहीं हटते हैं और असम्भव को सम्भव कर दिखाते हैं।

दधिपर्ण–क्या मैं स्वयंवर में कल्पना मात्र से उड़कर जा सकता हूँ? इतने कम समय में कैसे पहुँचा जा सकता है? मेरे पहुँचने से पहले ही स्वयंवर हो जाता है, तो वहाँ जाने से क्या फायदा है?

कुबड़ा–आप फिक्र क्यों करते हैं महाराज ? कोई चिन्ता करने जैसी बात नहीं है। आप अपना निश्चय तो कर लीजिये, फिर सब साधन मिल जायेंगे। आप चाहेंगे, तो यह सेवक भी आपके साथ चल सकता है।

दधिपर्ण–आपको तो साथ रखूंगा ही, परन्तु पहुँचेंगे कैसे? क्या आपके पास कोई शक्ति है?

कुबड़ा–जाने का निर्णय कर लेते हैं, तो आपको निश्चित समय पर पहुँचा ही दूंगा।

कुबड़े की बात सुनकर महाराज दधिपर्ण ने सोचा कि इसके कहने के अनुसार जो भी कार्य किये हैं, उनमें सफलता ही मिली है। फिर कुबड़े की ओर देखकर वे बोले–आप कैसे पहुँचा सकते हैं? यह बताइए।

कुबड़ा–यह बात रहने दीजिये। आप चलने को तैयार हैं न?

दधिपर्ण–मैं तैयार हूँ।

महाराज दधिपर्ण कुबड़े को साथ लेकर रथशाला में आये और उसने एक अच्छा–रथ चुनकर उसमें दो घोड़े जोतने के बाद कहा–रथ में आप और मैं तथा एक छत्र थामने वाला, एक चंवर ढोलने वाला तथा दूसरे दो व्यक्ति, इस तरह कुल मिलाकर छह आदमी चलेंगे। फिर देखिये, मेरी बुद्धि का चमत्कार कि हम वहाँ कब पहुँचते हैं।

कुबड़े के कथनानुसार महाराज दधिपर्ण तैयार होकर रथ में बैठ गये और सबके अपने–अपने स्थान पर बैठ जाने के बाद कुबड़े ने दुपट्टे से कमर कसकर और हाथ में लगाम–सम्भाल कर रथ को आगे बढ़ाया।

राजभवन से लेकर नगर के प्रवेशद्वार तक तो घोड़े सामान्य गति से चलते रहे और नगर के बाहर पहुँचने पर रथ व घोड़ों की एक बार पुनः अच्छी तरह देखभाल कर लेने के बाद उसने इतनी तेज गति से रथ को चलाया कि उसमें बैठने वाले सभी अवाक् रह गये और महाराज दधिपर्ण सोचने लगे कि अरे यह क्या है? क्या इसने घोड़ों में दैवीशक्ति फूंक दी? क्या यह कुबड़ा कोई जादूगर है? यह क्या चमत्कार दिखा रहा है?

इस वसुंधरा में रत्नों की कमी नहीं है, परन्तु जौहरियों की कमी है। पास में बहुमूल्य रत्न पड़े हुए हैं, तो नसमझ ठोकर मारकर चल जायेगा, परन्तु जौहरी उन्हें छोड़ेगा नहीं, उठा लेगा। सूरत से तो यह कुबड़ा प्रतिभाशाली नहीं दिखता है, परन्तु यह अनेक कलाओं का धनी है। इसमें कौनसी शक्ति है, जो घोड़ों को चाबुक भी नहीं लगा रहा है, फिर भी इसके इशारे के साथ ये घोड़े पवन–वेग से दौड़ रहे हैं।

रथ बहुत ही तेजी से दौड़ रहा था। वन के दृश्य भागते नजर आ रहे थे, जिन्हें महाराज दधिपर्ण अपने विचारों में डूबे हुए देखते जा रहे थे। इतने में उनका दुपट्टा गिर गया। वे बोले–भाई! रोको, रथ को रोको। मेरा दुपट्टा गिर गया है।

कुबड़ा–यहाँ दुपट्टा कहाँ ? वह तो पच्चीस योजन पीछे रह गया है। अभी तो मैं रथ को मध्यम गति से चला रहा हूँ। यदि तीव्रगति से चलाता, तो और भी पीछे रह जाता।

दधिपर्ण–क्या कह रहे हो कि अभी मध्यमगति से चला रहा हूँ, तो फिर इससे और तीव्र गति क्या होगी? ऐसा कहकर वे सोचने लगे

कि मैं राजाओं का राजा होकर और शरीर से सशक्त होते हुए भी इस प्रकार की कला नहीं सीख सका। लेकिन मैं भी गणित विद्या में प्रवीण हूँ। आज मैं भी अपनी विद्या का प्रदर्शन करके इसके अभिमान को नीचा करूं। फिर वे उपवन में से गुजरते हुए एक फलदार वृक्ष की ओर देखकर बोले–आप अश्वविद्या तो खूब जानते हैं, परन्तु गणितकला भी जानते हैं क्या? देखिये, यह जो सामने वृक्ष आ रहा है, उसके फलों को मैं बिना गिने ही बता सकता हूँ, लेकिन अभी नहीं जब स्वयंवर से लौटकर दमयन्ती को साथ लेकर आयेंगे, तभी गणित विद्या का चमत्कार बताऊँगा।

दधिपर्ण की बात सुनकर कुबड़े ने सोचा कि दमयन्ती किसके साथ आयेगी और किसके साथ नहीं, यह इसको पता नहीं है और मैं गणित का चमत्कार देख पाऊँगा या नहीं, कुछ कह नहीं सकता। अगर कुछ क्षणों के लिए रथ को रोक देता हूँ, तो रास्ता बहुत बाकी रह जाता है। खैर देखा जायेगा। रथ को रोककर उन्होंने कहा–आप गणित का चमत्कार बतलाइए कि इस वृक्ष में कितने फल हैं ?

दधिपर्ण–मेरा दुपट्टा गिर गया, तब तो कहा कि बहुत पीछे रह गया, लेकिन क्या अब देर नहीं होगी? फिर भी मैं अपनी विद्या का चमत्कार बताये ही देता हूँ कि इसमें अठारह हजार फल हैं।

महाराज दधिपर्ण की बात को सुनकर कुबड़े ने वृक्ष को एक घूंसा मारा, जिससे वह गिर गया और उसके फलों को गिनने पर अठारह हजार फल निकले, तो कहा–यह कला भी कमाल की है।

दधिपर्ण–अश्वकला आपके पास है और गणितकला मेरे पास। यदि आप मुझे अपनी अश्वकला सिखा दें, तो मैं आपको अपनी गणितविद्या सिखा दूंगा।

दधिपर्ण की बात सुनकर कुबड़े ने कहा–आपकी बात मुझे मन्जूर है। मैं अपनी कला आपको सिखाने को तैयार हूँ। आप मुझे अपनी गणितविद्या सिखाइए।

इस प्रकार निर्णय करके दोनों ने अपनी–अपनी कलायें एक–दूसरे को सिखायीं और रथ को तेजी से चलाते हुए सूर्योदय से पहले कुंडिनपुर के निकट जा पहुँचे। आकाश में चारों और छायी लालिमा में राजभवन की ओर इशारा करते हुए कुबड़े ने कहा–आप देख लीजिये कि वह जो ऊँचा भवन दिख रहा है, वही कुंडिनपुर का राजभवन है।

दधिपर्ण–अरे! कुंडिनपुर आ गया, इतनी जल्दी कैसे आ गये?

कुबड़ा–हाँ महाराज, आ तो गया है। अभी यहीं ठहर जाइए। सवेरा होने पर कुंडिनपुर में प्रवेश करके मान–सम्मान के साथ राजभवन में चलेंगे।

❖ ❖ ❖

शुभ स्वप्नदर्शन : सूर्योदय

रात के पिछले प्रहर में सूर्योदय होने के करीब दमयन्ती ने एक स्वप्न देखा और उसी को देखते–देखते नींद खुल गयी। महाराज भीमरथ प्रातःकालीन कार्यों से निवृत्त होकर राजसिंहासन पर आकर बैठे कि उसी समय दमयन्ती भी आयी और नमस्कार करके अपने आसन पर बैठ गयीं।

दमयन्ती के सवेरे–सवेरे राजसभा में आने से महाराज भीमरथ को आश्चर्य हुआ और उसकी उत्सुकता बताते हुए बोले–सुपुत्री ! आज इतनी जल्दी कैसे?

दमयन्ती–पिताजी! मैंने एक स्वप्न देखा है, जिसका शुभाशुभ फल जानने के लिए उत्सुक हूँ।

भीमरथ–अच्छा! अपना स्वप्न तो सुनाओ।

दमयन्ती–पिताश्री ! मुझे स्वप्न प्रायः कम ही आते हैं, परन्तु आज मैं जब आत्मचिन्तन के लिए उठने वाली थी कि उससे पूर्व ही एक स्वप्न आया। उस स्वप्न में मैंने देखा कि एक देवी मेरे पास आकर बोली–दमयन्ती तुम इस प्रकार संकट में क्यों उलझी हुई हो? चलो, मैं तुम को कौशलभवन में ले चलती हूँ। मैं वनदेवी हूँ और तुम एक तरह से मनुष्य–देवी हो। तुम भी नारी हो और मैं भी नारी हूँ, इसलिए हम दोनों सहधर्मी हैं। तुम मेरे साथ चुपचाप चली आओ। मैं उसका विश्वास करके उसके साथ कौशल वन में जा पहुँची। वहाँ जाकर देखती हूँ कि एक बहुत ही सुन्दर बगीचा है, जिसमें फलों से

लदा हुआ एक आम का वृक्ष शोभित हो रहा है। उसकी ओर इशारे करते हुए वनदेवी ने कहा कि अब तुम फलों की शोभा देखने और आनन्द लूटने में विलम्ब मत करो। इस पर चढ़ जाओ और अपनी इच्छानुसार फल खाओ। मैं यहाँ की रक्षिका हूँ, तुम्हें कोई रोकने वाला नहीं है। मैंने कहा–देवी! यह आम का वृक्ष बहुत ऊँचा है, मैं चढ़ूं कैसे? वह बोली–फिक्र मत करो, साहस रखो और चढ़ने का प्रयास करो। यदि चढ़ने की कोशिश करोगी, तो मैं भी पीछे से सहारा दे दूंगी। मैं देवी का विश्वास करके वृक्ष पर चढ़ने लगी और क्षण भर में वृक्ष पर चढ़ गयी। ऊपर जाकर देखती हूँ कि वहाँ बहुत महक आ रही है। मंजरियाँ खिल रही हैं, फल पके हुए हैं और जैसे ही फल चखने की कोशिश की तो देखा कि सामने जो पक्षी बैठा हुआ था, उसने मुझे देखकर आवाज की और धड़ाम से नीचे गिर गया। यही मेरा स्वप्न है।

भीमरथ–सुपुत्री! यह शुभ स्वप्न तुम्हारे भव्य, उज्जवल, ज्योतिर्मान भावी जीवन को बताने वाला है। तुम कौशलवन के आम वृक्ष की तरह कौशल देश को प्राप्त करोगी, उसके मधुर फल चखोगी और पतिदेव को प्राप्त करोगी।

पिताजी के मुख से स्वप्न का मंगलकारी फल सुनकर दमयन्ती मन ही मन मुस्कराती हुई बोली–आपके वचन मंगल–रूप होवें।

पिता पुत्री के बीच वार्तालाप हो ही रहा था कि द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि महाराज दधिपर्ण के यहाँ से दूत आया है और आपसे मिलने की आज्ञा चाहता है। द्वारपाल के मुँह से दूत के आने की खबर सुनकर महाराज भीमरथ ने सोचा कि मैंने अपने जिस विशिष्ट व्यक्ति को दधिपर्ण के पास भेजा था, उसका तो अभी तक कोई समाचार ही नहीं मिला है, लेकिन उसके पहले ही उनका दूत आ गया है, तो ठीक है। दूत को अन्दर आने के लिए आज्ञा दे दी।

दूत ने राजसभा में आकर शिष्टाचार का प्रदर्शन करते हुए कहा–राजन्! आपकी जय–विजय हो। मैं महाराज दधिपर्ण का संदेश लेकर आया हूँ।

भीमरथ–सब कुशल मंगल है न?

दूत–राजन् ! महाराज दधिपर्ण आपका निमन्त्रण पाकर यहाँ नगर के बाहर उपवन में पधार गये हैं। मैं यही शुभ संदेश देने के लिए आपकी सेवा में आया हूँ।

दूत के वापस जाने के बाद महाराज भीमरथ सोचने लगे कि यद्यपि वे पहले दमयन्ती के स्वयंवर के समय नाराज होकर गये थे, जिससे सोचा था कि सम्भवतः वे दूसरी बार नहीं आवें, परन्तु बुद्धिमान पुरुषों का स्वभाव लम्बे समय तक रोष रखने का नहीं होता है। अगर किसी व्यक्ति के साथ कुछ झगड़ा हो भी जाता है, तो वे उसी समय निपटा लेते हैं अथवा भूल जाते हैं। ऐसे स्वभाव वाले व्यक्तियों का जीवन ही सार्थक होता है। अतः हमें महाराज दधिपर्ण की अगवानी करने जाना चाहिए। उन्होंने प्रधान जी को आदेश दिया कि नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों और सेठ साहूकारों को बुलाओ। सबके एकत्रित हो जाने पर महाराज भीमरथ सारी स्थिति को स्पष्ट करते हुए उन सभी को साथ लेकर अगवानी के लिए चले।

इधर जब महाराज दधिपर्ण को ज्ञात हुआ कि महाराज भीमरथ बहुत बड़े समूह के साथ अगवानी करने आ रहे हैं, तो उन्होंने सोचा कि मेरा भी कर्तव्य हो जाता है कि सामने जाकर मुलाकात करूं और कुबड़े की ओर देखकर पूछा–क्या करना चाहिए?

कुबड़ा–करना यही है कि इस तरह मिलिये, जैसे दो बिछुड़े हुए भाई आपस में मिलते हैं।

महाराज दधिपर्ण कुबड़े को साथ लेकर महाराज भीमरथ के सामने पैदल ही उपवन से बाहर आये और जैसे ही महाराज भीमरथ को उनके पैदल आने की बात मालूम हुई, तो वे भी अपने रथ से

नीचे उतर पड़े और आमने–सामने पहुँचकर दोनों एक–दूसरे के गले लग गये। क्षेम–कुशल पूछने के बाद दोनों उपवन में पहुँचे। महाराज भीमरथ का स्वागत करते हुए दधिपर्ण ने कहा–पहले जो कुछ हो गया है, उसको भूल जाइए।

भीमरथ–मेरे मन में तो पहले की घटना के बारे में कोई विचार ही नहीं है।

दधिपर्ण–आपने स्वयंवर के लिए मेरे पास इतने कम समय का निमन्त्रण भेजा कि जिसे देखकर मैं हतोत्साहित हो गया। फिर कुबड़े की ओर इशारा करते हुए आगे कहा–इनकी क्या प्रशंसा करूं? इनमें हाथी को वश में करने की कला, रसोई बनाने की कला और रथ चलाने की कला अपूर्व ही है। इन्होंने कहा कि आप निराश क्यों होते हैं? मैं आपको समय से पहले पहुँचा दूंगा और इतने थोड़े समय में यहाँ आने का श्रेय इन्हीं को है।

महाराथ भीमरथ पास में बैठे काले–कलूटे कुबड़े व्यक्ति की ओर देखकर आश्चर्य–चकित हो गये कि क्या यह नल हो सकता है? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा है और महाराज दधिपर्ण आदि को विश्राम करने के लिए ले जाकर एक भव्य भवन में ठहरा दिया।

महाराज दधिपर्ण तो स्वयंवर के बारे में जानने के लिए उत्सुक हो रहे थे कि अन्य राजा कहाँ ठहराये गये हैं? कौन–कौन आये हैं, स्वयंवर–मंडप कहाँ बना है? अपनी उत्सुकता को दबा नहीं सके, तो वे कुबड़े से बोले–आज ही तो स्वयंवर की तिथि है, क्या दूसरे राजा महाराजा नहीं आये?

कुबड़ा–हो सकता है कि तिथि बदल दी हो। खैर, अभी तो विश्राम करें, बाद में आराम से बातें करेंगे।

परिस्थिति के बारे में कुबड़ा अपने दृष्टिकोण से सोच रहा था, दधिपर्ण अपनी दृष्टि से और महाराज भीमरथ अपनी दृष्टि से विचार कर रहे थे कि दधिपर्ण से किस–प्रकार बात की जाये? इसका

निर्णय करने के लिए प्रधान जी आदि दूसरे–दूसरे व्यक्तियों के साथ मंत्रणा करने के लिए एकांत में जा बैठे। उन्होंने आपस में विचार करके निश्चय किया कि महाराज दधिपर्ण के पास जाकर सारी स्थिति उन्हें समझा देनी चाहिए।

अपने सभासदों से परामर्श करके महाराज भीमरथ दधिपर्ण के पास आये और उनसे बोले–राजन् ! अब हम दोनों मिलकर एकांत में कुछ बातें करें। प्रेम के वातावरण में अलगाव की बात नहीं रहती है। आपके मन में उठने वाली जिज्ञासाओं के समाधान व कुछ अन्य समस्याओं के बारे में आपसे बात करना जरूरी है।

दधिपर्ण–मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि जब दमयन्ती का विवाह हो चुका है, तब पुनः स्वयंवर क्यों रखा गया?

भीमरथ–राजन् ! आपको यह तो पता ही है कि नल अभी तक गायब हैं। उनकी बहुत खोज की, परन्तु पता नहीं लग रहा है। नल महाराज का पता लगाने वाले को मैंने राज्य का आधा हिस्सा भी देने की घोषणा कर रखी है। फिर भी कोई उनका पता नहीं लगा पा रहा है। ऐसी अवस्था में आपको विशेष रूप से इसलिए बुलाया है कि आपके पास में रहने वाला जो रसोइया है, उसका कला–कौशल ऐसा है, जो नल महाराज में पाया जाता था। साथ–साथ आपको इतने कम समय में वही व्यक्ति यहाँ ला सकता है, जो अश्व–विद्या में प्रवीण हो। सब कलायें तो आपके साथ आने वाले रसोइये में मिल रही हैं, परन्तु यह काला स्याह रंग और कुबड़ा शरीर देखकर कुछ निर्णय नहीं कर पा रहे हैं।

भीमरथ की बात सुनकर महाराज दधिपर्ण मन में कुछ विचार करते हुए बोले–आपकी बात सुनने से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं यह कुबड़ा ही नल महाराज न हों।

भीमरथ–हाँ राजन् ! यदि यह जन्म का ही कुबड़ा होता, तो कलायें कैसे सीख सकता था? और अश्वकला तो सीख ही नहीं

सकता था। सूर्यपाक भोजन बनाने की कला महाराज नल ही जानते थे, अन्य कोई नही, तो यह बात भी इसमें मिल रही है, अतः इससे आज सूर्यपाक भोजन बनवाइए।

महाराज दधिपर्ण ने भीमरथ के विचारों को सुनकर कुबड़े को बुलाया और कहा–आज सूर्यपाक भोजन बनाना है। स्वयंवर के प्रसंग में हम लोग यहाँ आये हैं, तो आज अपनी ओर से सबको भोज देना चाहिए।

कुबड़ा–आपका विचार उचित है। जब भोजन बनकर तैयार हो गया तो महाराज दधिपर्ण के पास आकर कुबड़ा बोला–राजन् ! भोजन तैयार है।

सभी आमन्त्रित भोजन करने बैठे तो वे खाते–खाते गद्‌गद् हो गये। महाराज भीमरथ ने भी भोजन की प्रशंसा करते हुए कहा–ऐसा स्वादिष्ट भोजन हमने पहली बार ही खाया है। उधर अन्तःपुर में रहने वाली सभी महिलायें भोजन करके आनन्दमग्न हो गयी और दमयन्ती मन में सोचने लगी कि यह भोजन तो वैसा ही है, जैसा मेरे पतिदेव बनाया करते थे। दूसरा कोई ऐसा भोजन नहीं बना सकता है। सूर्यपाक भोजन बनाने की कला उन्होंने अपने रसोइये को सिखा दी हो, यह बात भी गलत है। मन ही मन विचार करते हुए वह महाराज भीमरथ के पास आयी। पिता ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा–कहो भोजन कैसा था?

दमयन्ती–यह भोजन तो वैसा ही है, जैसा मेरे पतिदेव बनाते थे। सारी बातें उनसे मिल रही हैं, परन्तु यह कुबड़ा शरीर निर्णय करने में रुकावट डाल रहा है। एक परीक्षा और है, जिसे मैं आपके सामने करना चाहती हूँ। उस समय दूसरा कोई व्यक्ति न रहे।

महाराज भीमरथ ने अनुमति देते हुए दमयन्ती से कहा–पुत्री! तुम चाहो जैसा परीक्षण करने का कार्य कर सकती हो। जो रहस्य बना हुआ है, वह खुल जाये, तो अच्छा है।

दमयन्ती–ऐसा कीजिये कि महाराज दधिपर्ण और कुबड़े को अपने पास बैठाकर उनसे प्रश्न पूछिये। उनसे जो पूछने हैं, वे मैं आपको बताये देती हूँ। उस समय मैं भी पर्दे की आड़ में बैठी रहूँगी और जब मैं इशारा करूं, तब महाराज दधिपर्ण वहाँ पर न रहें, सिर्फ आप बैठे रहें।

भीमरथ–जैसा तुमने सोचा है, वैसा ही प्रबन्ध करता हूँ। उन्होंने महाराज दधिपर्ण को संदेश भिजवाया कि आप कुबड़े को साथ लेकर राजभवन में पधारें।

उनके आ जाने पर महाराज भीमरथ ने यथोचित सत्कार करने के बाद बात प्रारम्भ करने के लिहाज से महाराज दधिपर्ण की प्रशंसा करते हुए कुबड़े की ओर देखकर कहा–हाथी को वश में करने की कला, अश्वकला तथा सूर्यपाक की कला, ये सब कलायें आपने कैसे सीखी हैं? शारीरिक स्थिति को देखते हुए आप ये कलाएँ प्राप्त नहीं कर सकते थे। सही–सही बात बताइए। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि इसके पीछे कोई बड़ा रहस्य है। ऐसी शारीरिक स्थिति में ये कलाएँ नहीं सीखी जा सकती हैं। यदि कहो कि बीमारी से शरीर के टेढ़े–मेढ़े हो जाने से पहले ये कलायें सीखीं थीं, तो यह भी नहीं माना जा सकता है, क्योंकि बीमारी से शरीर के टेढ़े–मेढ़े हो जाने से बुद्धि भी कम काम करने लगती है, परन्तु आपकी बुद्धि में तो किसी प्रकार का अन्तर नहीं देखता हूँ और न शरीर में स्फूर्ति ही कम है। आपने किसी परिस्थितिवश या मन्त्र–शक्ति से अपने शरीर का परिवर्तन कर लिया हो, तो यह दूसरी बात है। अब आप इस गुप्त रूप में न रहिए। सही परिचय प्राप्त करने के लिए ही आपको राजभवन में बुलाया है। मेरा तो विश्वास है कि आप नल महाराज ही हैं।

महाराज भीमरथ की बात को सुनकर कुबड़ा कुछ मुस्कराते हुए बोला–क्यों गरीब आदमी की मजाक उड़ाते हैं? कहाँ तो नल महाराज और कहाँ मैं तवे के समान काले स्याह रंग और कुबड़े शरीर

वाला? आप नल महाराज का अपमान कर रहे हैं? मैंने कलाएँ कहाँ से सीखीं, इस बात को जानने से आपको क्या फायदा है?

कुबड़े की बात को सुनकर महाराज भीमरथ कुछ दुःखजनित रोषमिश्रित शब्दों में बोले–आपको अपना पूरा परिचय देना ही होगा। महाराज दधिपर्ण भी भीमरथ की बात से सहमत थे और सोचने लगे कि क्या यह नल महाराज हैं? मैंने इनके बारे में बहुत सोचा, लेकिन कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि वास्तव में बात क्या है? वे बोले–दीवान जी! राजनीति की यहाँ कोई बात नहीं है। महाराज भीमरथ चाहते हैं, तो अपने मन की बात खोलकर रख दीजिये। मैंने जो पूछा था, तो टाल दिया, लेकिन महाराज भीमरथ दृढ़ संकल्पी हैं और जानकारी के लिए ही मुझे और आपको यहाँ बुलाया है।

कुबड़ा–राजन् ! मैं इतने समय तक आपके पास रहा, फिर भी आपने पहिचाना नहीं?

दधिपर्ण–सच कहता हूँ कि मैं तो आपकी कलाओं को देखकर चकित हूँ। अभी तक भी मैं आपको नहीं जान सका कि आप कौन हैं? अब आपको खुलकर सब बात स्पष्ट बता देनी चाहिए।

महाराज दधिपर्ण की बात का भी जब कोई असर होते नहीं देखा, तो महाराज भीमरथ ने उन्हें संकेत करते हुए कहा–आप कुछ देर के लिए दूसरे कमरे में पधार जाइए।

संकेत को समझकर जब महाराज दधिपर्ण दूसरे कमरे में चले गये, तब पर्दे की ओट में खड़ी दमयन्ती से महाराज भीमरथ ने कहा–सुपुत्री! अब तुम्हें इनसे जो बात करनी है, वह सब खुलकर कर लो।

पिता की बात को सुनकर दमयन्ती ने कहा–आप कहते हैं कि मैं नल महाराज का रसोइया हूँ, लेकिन मैंने अपने राजमहल में सूर्यपाक कला से रसोई बनाने वाले रसोइये को कभी नहीं देखा है। अतः कैसे माना जा सकता है कि आप नल महाराज के रसोइये हैं?

यह तो सरासर झूठ है। मैं तो स्पष्ट रूप से अनुभव कर रही हूँ और मुझे पूरा विश्वास है कि आप नल महाराज ही हैं। आपने अपना यह कुबड़ा रूप किसी मन्त्र–शक्ति से बनाया है।

महाराज भीमरथ भी सोच रहे थे कि ये अपने आपको छिपा रहे हैं और दमयन्ती को सम्बोधित करते हुए बोले–तुम इनके चरणों का स्पर्श करो। जैसे ही दमयन्ती ने चरण–स्पर्श करते हुए चेहरे की ओर देखा, तो बोल पड़ी कि निश्चय ही ये मेरे पतिदेव हैं। स्पष्टतया इन्होंने अपना रूप बदल रखा है।

दमयन्ती के कहे हुए इन शब्दों को सुनकर महाराज भीमरथ भी उन्हें स्वतंत्र रूप से बातचीत करने के लिए अकेले छोड़कर दधिपर्ण के पास चले गये।

महाराथ भीमरथ के चले जाने के बाद दमयन्ती ने अनुनय–विनय करते हुए कहा–जंगल में आपने जो आदेश दिया था, उसका पालन करते हुए मैं यहाँ आ पहुँची हूँ। अब भी आप मुझ से अपने आपको क्यों छिपा रहे हैं? क्या मेरा कुछ अपराध हो गया है? अगर ऐसा हुआ हो, तो मुझे क्षमा करें। अब आप अपने सही रूप में प्रगट होकर मुझे संतोष प्रदान करें, यही मेरी आपसे प्रार्थना है।

दमयन्ती के इन विश्वास भरे वचनों को सुनकर नल गद्‌गद् हो उठे और बोले–कुछ देर के लिए मुझे एकांत जगह चाहिए। एकांत में पहुँचकर उन्होंने अपना असली रूप प्राप्त करने के लिए देव द्वारा दी गयी पेटी से नारियल को निकाल कर अपने शरीर से स्पर्श करके फोड़ दिया, जिससे वे अपने असली रूप में आ गये। इतना ही नहीं, बल्कि देवमाया से प्राप्त नारियल के स्पर्श से राजसी वस्त्राभूषणों से सुशोभित होकर दमयन्ती के सामने आकर खड़े हो गये। दमयन्ती ने देखा कि नल महाराज ही हैं, तो चरणों में नमस्कार बोली–आप धन्य हैं! आपकी जय–विजय हो। जैसे ही दमयन्ती की नजर उन पर पड़ी, तो हर्षातिरेक से उसका शरीर रोमांचित हो उठा

और उनके चरणों का अश्रुजल से प्रक्षालन करते हुए बोली–आपको पुनः पाकर मैं सौभाग्यशालिनी हो गयी हूँ।

महाराज भीमरथ और दधिपर्ण सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजे–सजाये नल महाराज को खड़े देखकर बोले–वाह राजन् ! आपने दुनिया को खूब भरमाया। यदि हमारी पुत्री अपनी चतुराई न दिखाती, तो शायद आपका अभी प्रगट होना कठिन ही था।

महराज दधिपर्ण भी कुबड़े के स्थान पर साक्षात् नल महाराज को देखकर आश्चर्य–चकित हो गये और अपना प्रमोदभाव व्यक्त करते हुए बोले–राजन् ! आपने तो कमाल ही कर दिया कि पास में रहते और आपकी कलाओं को देखते हुए भी हम आपको पहचान नहीं सके। यद्यपि आपने जीवन में ठोकर खायी है, परन्तु उसके लिए प्रायश्चित्त करके आपने अपने जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाया। इसके लिए मैं हजार–हजार धन्यवाद देता हूँ और साथ ही शिक्षा ग्रहण करता हूँ कि इन्सान को अपना जीवन न्याय–नीतिपूर्वक बिताना चाहिए।

महाराज नल के प्रगट हो जाने के समाचार कानों–कान सारे नगर में फैल गये। जिसने भी आश्चर्यकारी घटना को सुना, वही राजभवन की ओर चल दिया। इस प्रकार हजारों स्त्री–पुरुष राजभवन के सामने इकट्ठे हो गये। सभी यह जानने के लिए अधीर हो रहे थे कि यह सब कैसे सम्भव हुआ? इस एकत्रित जनसमूह को देखकर द्वारपाल ने अन्दर आकर महाराज भीमरथ को सूचना दी कि बाहर अपार भीड़ खड़ी है, जिस पर काबू पाना कठिन हो रहा है। आप एक बार बाहर आकर दर्शन दीजिये।

द्वारपाल की बात को सुनकर महाराज दधिपर्ण अपनी बातचीत को रोककर महाराज भीमरथ और नल महाराज को साथ लेकर बाहर आये और जैसे ही जनसमूह ने नल महाराज को देखा, तो जय–जयकार करते हुए वह उनकी ओर टकटकी लगाकर सोचने लगा कि क्या

नल महाराज अपने आपको कुबड़े के रूप में छिपाये हुए थे? महाराज भीमरथ और दधिपर्ण ने जन–समूह की उत्सुकता को देखकर महाराज नल को अपने अनुभव सुनाने का अनुरोध किया।

महाराज नल ने जनता को सम्बोधित करते हुए कहा–मेरे आत्मीय बन्धुओं! आप लोग मेरे जीवन में उतार–चढ़ाव के बारे में कुछ सुनना चाहते हैं और साथ–साथ यह भी जानना चाहते हैं कि मैं पवित्र पतिव्रता नारी को जंगल में अकेली छोड़कर क्यों चला गया और अपने आपको कुबड़े के रूप में क्यों छिपाये रखा? कुव्यसनों के कारण जब मैं राजपाट से हाथ धोकर जंगल में पहुँच गया, तब मुझे वहाँ कुछ ऐसा आभास मिला कि मेरा छोटा भाई कुबेर हमेशा के लिए मेरे जीवन को समाप्त करके निष्कंटक होकर राज्य पर अधिकार जमाये रखने की भावना रखता है। अतः अपने और दमयन्ती के जीवन को सुरक्षित रखने के लिए मैंने यही उचित समझा कि हम दोनों साथ–साथ न रहते हुए अलग होकर अपने–अपने जीवन की सुरक्षा का उपाय करें। अतः जब मैं इसी विचार से दमयन्ती को अकेली छोड़कर जाने लगा, तो उसके लिए मेरा यही संदेश था कि तुम अपने पिता के घर चले जाना और उसके बाद जब मैं जंगल में अकेला घूम रहा था, तब मेरे एक हितैषी देव ने मुझे सुरक्षित रखने के लिए मेरे शरीर को काला–कलूटा कुबड़ा बना दिया। साथ–साथ यह भी विधि बतलायी कि समय आने पर तुम अपने असली रूप में कैसे आ सकोगे? आज ऐसे ही सब संयोग मिल गये हैं कि उस विधि ा के प्रयोग द्वारा मैं अपने असली स्वरूप में प्रगट होकर आप लोगों के सामने उपस्थित हूँ।

मेरे प्यारे भाइयों ! अगर आप लोग मेरे जीवन से कुछ शिक्षा लेना चाहते हैं, तो मैं आपसे यही निवेदन करूंगा कि न्याय–नीतिमय जीवन बनाये रखने का सदैव ध्यान रखें। जो मनुष्य दुर्व्यसनों में फंस जाता है, वह अपने वर्तमान जीवन का भी अनष्टि करता है और भावी जीवन को अनिष्टकारी बना लेता है। दुव्यर्सनों का त्याग करने से

आपके अन्दर की सफाई होगी, जीवन पवित्र बनेगा और इहलोक व परलोक दोनों ही आपके लिए सुखकारी होगें। अब और विशेष क्या कहूँ?

महाराज नल के प्रगट होने के समाचार और नगरवासियों में होने वाली चर्चा धीरे–धीरे दूसरे राज्यों में भी फैल गयी। महाराज ऋतुपर्ण और रानी चन्द्रयशा ने भी जब इस खबर को सुना, तो वे भी अपनी सुपुत्री चन्द्रावती के साथ कुंडिनपुर आये। जैसे–जैसे महाराज नल के प्रगट होने के समाचार लोग सुनते गये, वैसे–वैसे ही देश–देश में घूमने वाले बनजारे और दूसरे भी हजारों व्यक्ति कुंडिनपुर में एकत्रित होने लगे, जिससे वहाँ एक मेला–सा लग गया।

❖ ❖ ❖

नल का राज्याभिषेक

सभी सगे–सम्बन्धी हितैषी बन्धु–बांधवों के कुंडिनपुर में एकत्रित हो जाने पर एक दिन महाराज भीमरथ ने अपने मनोभावों को प्रगट करते हुए कहा–नल महाराज की खोज करने वाले को मैंने आधा राज्य देने तक की घोषणा की थी। राज्य प्राप्ति की उत्कंठा से अनेक व्यक्तियों ने प्रयन्त किये, जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। नल महाराज को प्रगट करने में कौन सफल हुआ है, इसका हमें निश्चय करना है। मैं तो अपने वायदे के अनुसार आधा राज्य देने को तैयार हूँ।

महाराज भीमरथ की बात को सुनकर सभी अपने–अपने दृष्टिकोण से विचार करने लगे। उनमें से एक ने कहा–महाराज दधिपर्ण का कार्य सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यदि वे यहाँ नहीं आते, तो नल महाराज प्रकट नहीं हो सकते थे। इसीलिए मेरे विचार से महाराज दधिपर्ण राज्य–प्राप्ति के हकदार हैं।

दूसरे व्यक्ति ने अपने विचार प्रगट करते हुए कहा–इसमें मेरा मतभेद है। मैं सोचता हूँ कि महाराज दधिपर्ण को रसोइया समझकर उसकी कला की कीमत करते रहे, लेकिन वे उन्हें प्रगट नहीं कर सके। यहाँ लाने में तो दूत का हाथ है। उसने महाराज दधिपर्ण के सामने नजदीक की तिथि में स्वयंवर होने की बात रखी, तो वे यहाँ आये। इसलिए इनाम दूत को मिलना चाहिए।

तीसरे ने कहा–दूत तो अपनी चतुराई से रसोइया सहित

महाराज दधिपर्ण को यहाँ ले आया, परन्तु नल को प्रगट करने का श्रेय तो महाराज भीमरथ को ही है, क्योंकि उन्होंने कहा था कि जब तक आप सही परिचय नहीं देंगे, तब तक राजभवन से बाहर नहीं जाने दूंगा। इस प्रकार महाराज भीमरथ ही नल को प्रगट करने वाले सिद्ध हुए हैं। अतः दूसरे को आधा राज्य देने की बात करना ही बेकार है।

चौथे व्यक्ति ने बात को सुनकर कहा–यह बात भी अधूरी है। माना कि सभी ने नल महाराज को खोजने का प्रयत्न किया, लेकिन कोई भी उन्हें अपने असली रूप में प्रगट नहीं कर सका। इसका श्रेय तो दमयन्ती को हैं, क्योंकि दमयन्ती ने ही नल महाराज को पहिचानने और प्रगट करने में सफलता प्राप्त की है। इसलिए मेरे विचार से आधा राज्य दमयन्ती को मिलना चाहिए। अन्त में यह निर्णय हुआ कि आधा राज्य पाने की हकदार दमयन्ती ही है।

महाराज भीमरथ सर्वसम्मत निर्णय को सुनकर बोले आपका मत है कि दमयन्ती को राज्य देना चाहिए, परन्तु दम्पति में पहला स्थान पति का है, इसलिए नल महाराज को आधा राज्य सौंपकर उनका राज्याभिषेक करें।

महाराज भीमरथ के विचारों को सुनकर सभी ने महाराज नल का राज्याभिषेक करने के बारे में निश्चय किया कि प्रातःकाल इस महान् कार्य को सम्पन्न कर दिया जाये।

महाराज नल का राज्याभिषेक होने की बात सारे नगर में फैल गयी थी। अतः दूसरे दिन प्रातःकाल होते–होते राजभवन के सामने वाले मैदान में हजारों स्त्री–पुरुषों का समूह इकट्ठा हो गया और सभी उत्सुकता से बाट देख रहे थे कि महाराज नल और पवित्र आत्मा दमयन्ती के दर्शन करें।

राज्याभिषेक की विधि प्रारम्भ होने वाली ही थी कि आकाश में एक भव्य प्रकाश फैल गया। दर्शकों की नजर ऊपर की ओर गयी,

तो उन्होंने देखा कि एक प्रकाश–पुंज नीचे आ रहा है। उसे देखकर उनके मन में विचार आया कि महाराज नल के आभ्यन्तर तप के फलस्वरूप अथवा दमयन्ती की निष्ठा के कारण कोई देव इस समारोह में सम्मिलित होने के लिए आ रहा है।

देखते–देखते वह प्रकाशपुंज नीचे उतरा, तो मालूम हुआ कि वह कोई ऋद्धिशाली देव है और उसने आगे बढ़कर दमयन्ती के चरणों में मस्तक झुकाया। इस आश्चर्यकारी दृश्य को देखकर सब सोचने लगे कि क्या नल की अपेक्षा दमयन्ती का जीवन श्रेष्ठ है? ये दोनों जीवन– साथी हैं, तो फिर देव दमयन्ती को ही क्यों नमस्कार कर रहा है ? इसका रहस्य प्रगट होना चाहिए।

दर्शकों के चेहरों पर झलक रही जिज्ञासा को समझ कर देव उनके समाधान के लिए बोला–बन्धुओं ! आप लोग आश्चर्य कर रहे हैं कि मैंने इनको ही नमस्कार क्यों किया?

जब मुझे अपना पूर्वभव याद आता है, तो देखता हूँ कि इस सती के प्रताप से ही मैंने यह ऋद्धिशाली देवपद प्राप्त किया है। आप जानना चाहेंगे कि कैसे? मैं तापसपुर में रहकर अज्ञान तप कर रहा था, तब वहाँ पर इस पवित्र सती के दर्शन हुए और इन्होंने मुझे धर्मकथा के माध्यम से वह पवित्र मार्ग बतलाया, जो किसी व्यक्ति विशेष के लिए ही नहीं, वरन् प्राणीमात्र के लिए हितकारी है। जीवन को उन्नत बनाने के लिए इन्होंने चार शरणभूत तत्त्व बतलाये–अरिहन्त, सिद्ध, साधु, वीतराग प्ररूपित धर्म और इनका स्वरूप समझाते हुए कहा–जिन आत्माओं ने चार घनघाती कर्मों का क्षय कर दिया है, उन्हें अरिहन्त कहते हैं। जिन्होंने निःशेष रूप से कर्मों का क्षय करके सिद्ध, बुद्ध निरंजन अवस्था प्राप्त कर ली है, वे सिद्ध कहलाते हैं। पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति का पालन करते हुए जो अपनी आत्मा की साधना में रत रहते हैं, वे साधु हैं। वीतराग केवली भगवान द्वारा प्ररूपित श्रुत और चारित्र धर्म है। इस सती ने ही इन

चारों का बोध मुझे पहली बार कराया था और मैं इनके द्वारा बतलाई गयी साधना के अनुसार कभी सिद्ध के स्वरूप का ध्यान करता, तो कभी अरिहन्त का, कभी साधु के और कभी सिद्ध के स्वरूप का चिन्तन करता, जिससे मुझे शांति का अनुभव हुआ और संयम की आराधना से आत्मशुद्धि करके जीवन के अन्त में संथारापूर्वक शरीर को छोड़कर देवलोक में उत्पन्न हुआ। अतः धर्म– संस्कार प्रदान करने वाली इस बहिन का उपकार मानने के लिए यहाँ आया हूँ।

देव के इस वर्णन को सुनकर सभी हर्ष–विभोर हो गये और जब देव अन्तर्धान हो गया, तो सभी ने दमयन्ती से प्रार्थना की कि आप अपने मुखारविन्द से धर्मकथा सुनाइए।

दर्शकों की भावना को ध्यान में रखकर महाराज भीमरथ ने राज्याभिषेक के पूर्व दमयन्ती को भी अपने अनुभव सुनाने का संकेत किया, तो वह जन–समुदाय को सम्बोधित करते हुए बोली–

प्रिय आत्मीय जनों! आप यदि इस जीवन में आनन्द का अनुभव करना चाहते हैं और दिव्य सुख की ओर बढ़ना चाहते हैं, तो जीवन में धर्म के मर्म को समझकर उसे अपने जीवन में उतारें। धर्म किसी जाति, व्यक्ति या दल की बपौती नहीं है, वह तो जीवन का वास्तविक स्वरूप है। पानी को ही लीजिये। क्या इस पर किसी जाति–विशेष का अधिकार है? क्षत्रिय आदि द्वारा बनाये हुए कुएँ से यदि कोई पानी भरे, तो भले ही लोग कह दें कि यह क्षत्रिय के कुएँ का पानी है या शूद्र के कुएँ का पानी है या ब्राह्मण, वैश्य के कुएँ का पानी है, परन्तु वैश्य आदि का सम्बोधन कर देने मात्र से क्या कुएँ के पानी में भेद पायेंगे? पानी वस्तुतः निर्विकारी है यानि पानी तो पानी ही है। वह चाहे किसी भी कुएँ का हो, लेकिन वह जनमानस के जीवन को तृप्त करने वाला बनता है। वैसे ही इन्सान के जीवन में धर्म का स्थान है अर्थात् धर्म का स्वरूप किसी जाति, व्यक्ति या दल के साथ रहते हुए भी निर्विकारी है। धर्म तो स्व–पर कल्याण करता

है, प्राणीमात्र के लिए शांति, आत्मीयता और क्षमता के अनुसार आराधना और अनुभूति करने का अवसर देता है और जो अपनी अनुभूतियों को सिद्ध करने के लिए तत्पर हो जाता है, वह धर्म के रहस्य को प्राप्त कर लेता है।

आप मुझसे अनुभव सुनना चाहते हैं, तो यही कहूँगी कि अभी– अभी जिस देव ने आपके सामने उपस्थित होकर अपने पूर्वभव का वृत्तांत सुनाते हुए जो कुछ कहा है, उसे आप सुन चुके हैं। अतः आप भी अपने जीवन में इन चार शरणों को स्थान देकर चलेंगे, तो अपने वर्तमान जीवन के साथ भावी जीवन को भी आनन्दमय बना सकेंगे।

सम्यक्दृष्टिपूर्वक जो व्यक्ति अपने जीवन में वास्तविक धर्म की साधना करता है और प्रसंगवश कदाचित् उसके जीवन में कष्ट आ जाता है, तो साधारण जनों की दृष्टि में भले ही वह कष्ट अनुभव करता हुआ प्रतीत होता हो, परन्तु धर्मी पुरुष उसे कष्ट नहीं समझता है। वह सोचता है कि यह तो मेरी परीक्षा का प्रसंग है और परीक्षण अनुकूल परिस्थितियों में उतना नहीं होता, जितना प्रतिकूल परिस्थितियों में होता है।

आप सोच रहे होंगे कि मैंने वन में बहुत कष्ट उठाये। पैरों में कांटे चुभे, कंकर चुभे, छाले पड़े, शीतकाल में हाथ–पैर ठिठुर गये, भूख–प्यास का भी अनुभव हुआ और इन परिस्थितियों ने मुझे कुछ समय तक परेशान किया, मन को अटपटा लगा, परन्तु जैसे ही मैंने उन बाधाओं की उपेक्षा करके अपने ध्यान को आत्मा पर केन्द्रित किया, तो जिन कष्टों से मैं पूर्व में परेशानी का अनुभव कर रही थी, उन कष्टों की ओर से ध्यान हट जाने के कारण वे मुझे दुःखदायक नहीं रहे। व्यक्ति जब सोचने लग जाता है कि अमुक से कष्ट हो रहा है, तब बार–बार उसका ध्यान उसी तरफ जाता है। लेकिन जब मैं कष्टों की स्थितियों में से गुजरती थी, तो आत्मज्योति की ओर अपने

को केन्द्रित करके उसी में निमग्न हो जाती थी, जिससे खयाल ही नहीं होता था कि कांटे चुभ रहे हैं, कंकर लग रहे हैं और ऐसी भावना सबल हो गयी, तो जंगल में भी मंगल का अनुभव करते हुए मेरा जीवन प्रमुदित रहने लगा।

जंगल की परिस्थितियों में अकेले रहने पर मेरे जीवन में जो उत्क्रांति हुई, शांति का संचार हुआ, उससे मैं इतनी सक्षम बनी कि शायद पचास वर्ष तक सामान्य तौर पर राजमहल में रहते हुए आत्मशक्ति को इतना केन्द्रित नहीं कर पाती।

आत्मज्योति के प्रति निष्ठा हो और निष्ठा के साथ यदि चलने का प्रयास किया, तो अवश्य आनन्द का अनुभव करेंगे। परन्तु कष्ट को कष्ट मानेंगे, तो मन हैरान होकर उत्साहहीन हो जायेगा और इसके विपरीत कष्ट को सहायक समझकर चलेंगे, तो मन एकाग्र हो जायेगा। इसीलिए मैं संकेत देती हूँ कि मन को सही दिशा में केन्द्रित करने की कोशिश करें। विशेष क्या कहूँ !

दमयन्ती के अनुभवों को सुनकर सभी गद्‌गद् होकर सोच रहे थे कि इसने मानव–जीवन को सफल बनाने की जो बातें कही हैं, उन पर अगर हम लोग भी आचरण करें, तो हमारा जीवन भी सफल बन सकता है।

इतने में ही द्वारपाल ने आकर महाराज भीमरथ से निवेदन किया–राजन् ! कौशल देश की जनता के प्रतिनिधि सभा में आने की आज्ञा चाहते हैं।

द्वारपाल के मुख से इस संदेश को सुनकर महाराज भीमरथ ने प्रसन्न होते हुए प्रतिनिधियों को सम्मान सहित सभा में लाने की आज्ञा दी।

प्रतिनिधिमंडल को सम्मानपूर्वक यथायोग्य स्थान पर बैठाने के बाद महाराज भीमरथ ने कहा–इस अवसर पर आपको भी अपने बीच देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। तब प्रतिनिधि–मण्डल

के प्रमुख ने महाराज भीमरथ के प्रति सम्मान प्रकट करके कौशलदेश की प्रजा की भावना को व्यक्त करते हुए कहा–उपस्थित सज्जनों! आज हम सौभाग्यशाली हैं कि हमारे स्वामी प्रायश्चित्त करके प्रगट हो गये हैं। कौशलदेश में जब समाचार पहुँचे कि नल महाराज अपने असली रूप में प्रकट हो गये हैं, तो सारी प्रजा आनन्द से झूम उठी। प्रजा के प्रतिनिधियों ने मिलकर आपस में विचार करते हुए निश्चय किया कि जिस जनता का शासक क्रूर और कुव्यसनी हो, अपने स्वार्थ के लिए जनता के हित व अहित को देखने का ध्यान नहीं हो और सिर्फ अपना ही स्वार्थ सिद्ध करता हो, तो ऐसे शासक को हटा देना प्रजा का मौलिक अधिकार होता है। अतः अब हम उनसे विनती करें कि आप वापस देश में पधारें और प्रजाजनों की सुख–सुविधा के लिए शासन की बागडोर सम्भालने की कृपा करें। प्रजा की भावना को मूर्तरूप देने के लिए हम नल महाराज का राज्याभिषेक करने के लिए उपस्थित हुए हैं। अभी हमारा जो शासक है, वह क्रूर कुव्यसनी है और उससे सारे देशवासी घृणा करते हैं। हम महाराज नल को अपना शासक बनाना चाहते हैं और राज्याभिषेक करने के लिए आवश्यक साधन सामग्री लेकर आये हैं। आप हमें अपना कार्य करने की आज्ञा दीजिये।

प्रतिनिधि–मण्डल की बात को सुनकर महाराज भीमरथ अपना प्रमोदभाव प्रगट करते हुए बोले–मैं तो अपने संकल्प के अनुसार आधा राज्य देकर नल महाराज का अभिषेक कर ही रहा हूँ और कौशलदेश की जनता की भावना को सुनकर सोच रहा हूँ कि जिस देश की प्रजा में इतना साहस हो, वहाँ का शासक निरंकुश नहीं बन सकता और जो शासक देश के प्रत्येक व्यक्ति के हिताहित को नहीं सोचकर सिर्फ अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए भेदभाव पैदा करता है, वह शासक कभी भी शासन करने के योग्य नहीं बन सकता। आपने जिस गम्भीरता के साथ निर्णय लिया है, उसका हम सब समर्थन करते हैं।

महाराज भीमरथ की तरह कौशल–देशवासियों की ओर से वहाँ के प्रतिनिधियों ने नल महाराज का राज्याभिषेक किया। इस प्रकार नल महाराज अपने पूर्व राज्य के साथ–साथ महाराज भीमरथ के आधे राज्य के और स्वामी बन गये।

कौशलदेश के जन–प्रतिनिधियों द्वारा महाराज नल का राज्याभिषेक करने के बाद उनके प्रमुख सदस्य ने नम्रतापूर्वक निवेदन करते हुए कहा–हम लोगों ने प्रजा की भावना के अनुसार अपना कार्य कर लिया है और हम आपकी शरण में आ गये हैं। अतः आप जल्दी से जल्दी कौशल देश पधार कर हमारी रक्षा करें। प्रजा आपके पधारने की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही है।

❖ ❖ ❖

पुनरागमन और राज्यशासन

महाराज नल का राज्याभिषेक करने के लिए कुंडिनपुर गये हुए प्रतिनिधि मण्डल के लौटने और महाराज नल के भी शीघ्र पधारने के समाचार सारे कौशलदेश में बिजली की तरह फैल गये, जिन्हें सुनकर लोग प्रसन्नता से फूले नहीं समा रहे थे। जहाँ—तहाँ जनता एकत्रित होकर उनके बारे में चर्चा करने लगी थी, जिससे ऐसा मालूम पड़ता था कि मानो वर्षों से मन के कोनों में छिपा हुआ उत्साह, उल्लास अपना नया रूप धारण करके महाराज नल की तरह ही प्रगट हो गया है। प्रत्येक गाँव और नगर अपने—अपने ढंग से सजाये जाने लगे और कोशला नगरी की सजावट तो ऐसी हो गयी थी कि देवनगरी ही यहाँ आकर बस गयी हो। कहीं पर तो महिलायें महाराज नल और सती दमयन्ती का नाम ले—लेकर मंगल गीत गाती थीं, तो पुरुष उनका जयघोष करने के साथ—साथ गुणगान करते हुए हर्षविभोर हो रहे थे। बालक—गण रंग—बिरंगे कपड़े पहने उछल—कूद मचाते थे और वृद्धजन अपने राजा—रानी के स्वागत की तैयारी में जुटे हुए थे।

महाराज नल और महारानी दमयन्ती को जब बहुत बड़ी सेना के साथ आते देखा, तो नगरवासी उनके स्वागत के लिए दौड़ पड़े। महिलाएँ सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजी हुई सोने के थालों में मंगल द्रव्य सजाकर नल और दमयन्ती के मंगल गीत गा रही थीं और पुरुष उच्च स्वर से जयघोष कर रहे थे। निकट पहुँचने पर पुरुषों ने नल

को तथा स्त्रियों ने दमयन्ती को चारों ओर से घेर लिया। सब उनके चरणों में झुक–झुक कर प्रणाम करने लगे और वे उन सबको गले लगाते हुए क्षेम–कुशल पूछने लगे।

कुबेर को जब से यह मालूम हुआ कि नल महाराज प्रगट हो गये हैं और जनता ने उनका राज्याभिषेक कर दिया है, तो वह छटपटाने लगा और आर्त–रौद्र ध्यान में डूब गया। परिस्थिति पर विचार करने के लिए उसने अपने चापलूस बदमाश मित्रों को बुलाया कि अब क्या करना चाहिए?

महाराज नल के साथ आये हुए राजाओं में से एक ने नल को राय दी कि कुबेर को साधारण रूप में जानकारी दे दी जाये कि जनता ने महाराज नल को अपना राजा मान लिया है। अतः अब राज्य पर उसका अधिकार नहीं रहा है। सलाह को उचित मानकर महाराज नल ने इस बात की सूचना दूत के द्वारा भिजवा दी।

दूत के मुख से समाचार सुनकर कुबेर सोचने लगा कि मुझे कुछ ऐसा रास्ता निकालना चाहिए कि जिससे मेरी स्थिति सुरक्षित रह सके। इतने बड़े सैन्यबल से तो मैं जीत नहीं सकूंगा। इसलिए कोई न कोई दूसरी नीति सोचनी चाहिए, क्योंकि नीतिकारों ने कहा है–^^cf) ;L; cy rL;** अर्थात् जिसके पास बुद्धि है, वही बलवान है। दूत की ओर देखकर वह बोला–मैं महाराज नल को इसका उत्तर भिजवा दूंगा।

दूत के चले जाने के बाद कुबेर ने अपने अन्तरंग मित्रों के साथ सलाह–मशविरा करने के बाद दूत के द्वारा समाचार भिजवाया कि जिस तरीके से मैंने आपसे राज्य लिया था, उसी तरह पुनः जुए में जीतकर राज्य सम्भाल लो।

दूत के मुख से कुबेर के उत्तर को सुनकर महाराज नल मुस्कराये और बोले–भाई! अभी भी वह पहले वाला स्वप्न देख रहा है। कुबेर से कह देना कि जनता के द्वारा प्राप्त अधिकार और

शासन—सम्पत्ति का जनता के कल्याण के लिए तुमने सही रूप में उपयोग नहीं किया है। जनता के प्रति वफादार नहीं रहे हो। अब जनता में जागृति आ गयी है। देश पर वही शासन कर सकता है, जो जनता की सुख—सुविधा का ध्यान रख सके। ऐसा नहीं करने वाला शासक जनता पर शासन नहीं कर सकता।

कुबेर ने जब महाराज नल के द्वारा कहे गये विचारों को दूत के मुख से सुना, तो उत्तेजित होकर दूत के द्वारा नल के पास पुनः समाचार भिजवाया कि मैं ऐसी मीठी—मीठी बातों में आकर राज्य देने वाला नहीं हूँ। बातों में आकर राज्य दे देना कायरता है। जब आप सेना को साथ में लेकर आये ही हैं, तो युद्ध करने के लिए तैयार हो जाइए।

कुबेर ने इस उद्दंडता—भरे उत्तर को सुनकर महाराज नल सोचने लगे कि यद्यपि उसने युद्ध के लिए ललकारा है, परन्तु जहाँ तक हो सके, हमें शालीनता के साथ इस काम को पूरा करना चाहिए। दूसरे उपायों के विफल हो जाने पर हमें दण्डनीति का प्रयोग करना चाहिए।

महाराज नल ने अपने सहयोगी योद्धाओं से परामर्श करने के बाद दूत के हाथ कुबेर को संदेश भिजवाया कि युद्ध की बात करना तो सरल है, लेकिन युद्ध के कारण जितनी जन—धन की हानि होगी, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। इसलिए मैं नहीं चाहता कि इस अशाश्वत जीवन में बेकार खून—खराबा किया जाये। तुमको समझना चाहिए कि जिस शासक को जनता स्वीकार नहीं करती, वह शासन नहीं कर सकता है। अब तुम्हारी यही स्थिति है। तुमने यदि जनता के साथ न्यायनीति का व्यवहार किया होता, तो वह तुमसे विमुख नहीं बनती। अब तो यही उपयुक्त है कि युद्ध की बात करना छोड़कर प्रजा की भावना समझो।

महाराज नल के द्वारा भेजे गये इस संदेश को सुनकर कुबेर

एकदम उत्तेजित हो गया और सेना के साथ मैदान में आकर बोला–मैं युद्ध के लिए तैयार हूँ। बिना हार–जीत का फैसला हुए राज्य को नहीं छोड़ सकता।

कुबेर की इस धमकी को सुनकर सेना के अधिकारियों ने सोचा कि अब इसका सुधार तो सेना ही कर सकती है। किन्तु महाराज नल ने स्थिति को देखकर अपने सेनानायकों को संकेत करते हुए कहा–कुबेर तो अभिमान में डूबा हुआ है। इसे कुछ भी विवेक नहीं रहा है और हार–जीत का फैसला करना चाहता है। इसलिए युद्ध में यह ध्यान रखना है कि जनता की खून–खराबी न हो।

युद्धकला में निपुण और नीति में प्रवीण सेनानायकों ने महाराज नल के संकेत को समझकर अपनी चतुराई से बिना खून–खराबे के कुबेर को जिन्दा पकड़ कर महाराज नल के सामने खड़ा कर दिया और बोले–राजन् ! हमने कतई खूनखराबी नहीं होने दी और ऐसी तरकीब लगायी कि यह अपने आप ही हमारे जाल में आकर फंस गया। अब आप आज्ञा दीजिए कि इसको क्या दण्ड दिया जाये?

सेनानायकों की बात को सुनकर महाराज नल चाहते, तो कुबेर से बदला ले सकते थे, लेकिन वैसा कुछ न करके वे सोचने लगे कि यह मेरा भाई है। पहले इसके विचारों को समझ लूं कि अब यह क्या चाहता है? फिर कुबेर की ओर देखकर बोले–भाई! क्या अभी भी दुर्व्यसनों में फंसे रहना चाहते हो? अभी भी अपनी चरित्र–हीनता का भान नहीं करना चाहोगे?

बंधुओं! जिसका जीवन आचार–विचार से पवित्र होता है, तो उस व्यक्ति के थोड़े–से शब्दों का असर क्रूर से क्रूर व्यक्ति पर भी हुए बिना नहीं रहता। इसलिए महाराज नल की हितकारी बात को सुनकर कुबेर सोचने लगा कि चरित्रहीनता के कारण मेरा ऐसा पतन

हुआ कि मैं जिन्दा पकड़ लिया गया। दुश्चरित्र के सहारे मैंने अनेकों को बर्बाद किया। भाई को जंगल में भटकाया। यह बड़ा पाप था। वह बार–बार प्राणों की भीख मांगते हुए, आँखों में आँसू बहाते हुए और पापों का प्रायश्चित करते हुए दीनता से गिड़गिड़ा कर बोला–भाई! मैं बार–बार यही निवेदन करना चाहता हूँ कि मुझे पापों का फल मिलना ही चाहिए। मैं पाप का फल भोगना चाहता हूँ और आज से इन दुर्व्यसनों व दुराचरण को छोड़ता हूँ। मैं प्रण करता हूँ और साथ ही साथ यदि मेरे हाथ खुले हों, तो मुँह में तिनका लेकर प्राण–रक्षा की भीख माँगता हूँ। मैं अनैतिकता को छोड़कर आपका अनुचर बन कर जिन्दा रहना चाहता हूँ।

बन्धुओं! अनेक व्यक्तियों के जीवन को बरबाद करनेवाली अनैतिकता को हटाने के लिए यदि मनुष्यों में क्षमता नहीं आयी और इसको हटाने के लिए कमर कसकर तैयार नहीं हुए, तो क्या स्थिति बनेगी? यह ज्ञानी ही जानें। परन्तु यह बात बच्चों, जवानों और बुजुर्गों को समझनी है कि वर्तमान में जीवन में सुख–शांति से रहना है, तो अनैतिकता को एक क्षण के लिए भी नहीं अपनाना चाहिए। यह दृष्टि उसी में आयेगी, जो इस भौतिक सत्ता–सम्पत्ति आदि को नाशवान समझकर नाक के श्लेष्म की तरह फेंक देता है और उसमें ममता नहीं रखता है।

महाराज नल क्षत्रीय वीर थे, दयालु थे। इसलिए कुबेर के कथन को सुनकर सोचा कि मेरी नीति मनुष्य को मारने की नहीं, किन्तु उसके जीवन का परिवर्तन करने की है और यह प्रण भी कर रहा है कि अब भावी जीवन में अनैतिकता नहीं अपनाऊँगा। यदि भविष्य में यह अनुशासन भंग करेगा, तो अवश्य ही दंड भोगेगा। अनुशासनहीन व्यक्ति राष्ट्र के लिए कलंक है, घुन है। जब यह हीन बनकर प्राणों की भीख मांग रहा है, तो मुझे इसे माफ कर देना चाहिए। वे बोले–दुष्कृत्यों को देखते हुए तुम दण्ड के पात्र अवश्य

हो, लेकिन भविष्य में अपने जीवन को नैतिक बनाने के लिए प्रण कर रहे हो, तो मैं अभयदान देता हूँ।

महाराज नल की इस अद्भुत उदारता, दयालुता और क्षमाशीलता को देखकर सब लोग उनकी बार–बार प्रशंसा करने लगे तथा अभयदान देने के शब्दों को सुनकर सेनानायकों ने कुबेर को बन्धन –मुक्त कर दिया।

बन्धन–मुक्त होने पर कुबेर भाई के चरणों में पड़कर सिसकियाँ भरने लगा और रोते हुए बोला–मेरे जैसा पापी इस दुनिया में कोई नहीं है और आप जैसा दयालु भी दूसरा नहीं है। मति भ्रष्ट हो जाने से मेरा चारित्रिक पतन हो गया। कुसंगति और कुव्यसनों के कारण मैं आपके लिए दुःखदायी बना। आप अपने पुण्योदय और अपने चरित्र–बल से बच गये हैं। मैंने तो आपको खत्म करने की पूरी योजना बना ली थी। इसके लिए मैंने अपने दुष्ट मित्रों को आपकी खोज में भेजा भी था, लेकिन उनको मौका नहीं मिला। मुझ जैसे अधम व्यक्ति को भी आपने क्षमादान देकर अपनी उदारता का परिचय दिया है।

कुबेर के भावों को सुनकर महाराज नल ने गद्गद् होकर उसे गले लगाते हुए कहा–भाई! रोओ मत। मैंने भी ठोकर खायी और तुमने भी खायी। मैंने भी प्रायश्चित्त किया और तुम भी प्रायश्चित्त कर रहे हो। अब जीवन पवित्र भावना की ओर मुड़ गया है। जनता मेरे नाम की ध्वजा चाहती है। अतः आन मेरी रहेगी और शासन तुम सम्भालो।

कुबेर–मुझे अब राज्य से कोई मतलब नहीं है। अब मैं आपके अनुशासन में रहकर अपना जीवन शुद्ध बनाने का प्रयत्न करूंगा।

कुबेर के इस हृदयपरिवर्तन को देखकर सब आश्चर्य करने लगे कि इसमें यह वृत्ति कैसे आयी? यदि इसको फांसी पर लटका देते, तो जीवन में परिवर्तन नहीं आ सकता था। यह सब तो चारित्रनिष्ठा और नैतिकता के प्रभाव से हुआ है।

इसके बाद महाराज नल और दमयन्ती ने अपने साथ आये हुए सामन्तों आदि के साथ नगर में प्रवेश किया। नगरवासियों ने पहले से ही नगर को सजा रखा था। स्थान–स्थान पर स्वागतद्वार बने हुए थे। प्रत्येक घर के द्वार पर वंदनवार बन्धे हुए थे और सामने मंगल–कलश रखे थे। सुगन्धित पदार्थों से सारा नगर महक रहा था। प्रजा ने इस सजे सजाये नगर के राजमार्गों से जुलूस के रूप में घुमाते हुए तथा स्थान–स्थान पर स्वागत–सत्कार करते हुए उनका राजभवन में प्रवेश कराया और राजसिंहासन पर बैठने के बाद सभी राजा, जागीदार, सामन्त आदि अपने द्वारा लाये हुए उपहार महाराज नल को भेंट करने लगे।

विशेष समय से उदास–सा दिखने वाला राजभवन, जिसे देखकर प्रजा दुःखित होती थी और जिसकी अनेक स्मृतियाँ जाग उठती थीं, आज उसी भवन में महाराज नल दमयन्ती के पुनः पधार जाने से प्रजा के आनन्द का पार न रहा और वह कई दिनों तक उत्सव मनाती रही।

राज्यशासन अपने हाथ में लेकर महाराज नल सोचने लगे कि इसकी सुरक्षा के लिए मुझे तटस्थ भाव से शासन करना चाहिए। राज्य में महाराज नल के नाम का ढिंढोरा पिट जाने से चोर, लंपट आदि छिप गये, उन्होंने दृष्कृत्यों को करना छोड़ दिया। राज्य की सुव्यवस्था के लिए उन्होंने दुर्व्यसनों का निषेध कर दिया और प्रजा भी सोचने लगी कि यदि दुर्व्यसनों में फंसे रहे, तो महाराज दण्ड देने से नहीं चूकेंगे। सब लोग अपने–अपने कर्तव्यों का पूर्ववत् पालन करते हुए अपने राजा को आदर्श मानकर वैसा ही आचरण करने लगे। थोड़े ही दिनों में सारी प्रजा पुनः सुख–समृद्धि से सम्पन्न हो गयी।

सत्ता और सम्पत्ति के अधिकारी होते हुए भी महाराज नल ने राज्यकोष का अपने लिए कभी उपयोग नहीं किया। वे अपने तथा रानी के

भरण–पोषण के लिए निजी उद्योग करते और उसी से अपना जीवन निर्वाह करते थे।

महाराज नल के राज्य में कहीं भी दुर्भिक्ष या महामारी का नाम तक सुनायी नहीं देता था। समय पर वर्षा आदि होने से धान्य की उपज काफी होती थी, वन–उपवन के वृक्ष फल–फूलों से लदे रहते थे और घी–दूध की नदियाँ बहती रहती थीं। इस प्रकार थोड़े समय में ही प्रजा निर्भय होकर आनन्द के सागर में गोते लगाने लगी और कहीं पर भी अन्याय का नाम तक नहीं रहा।

❖ ❖ ❖

आत्मसाधना के मार्ग पर

महाराज नल को राज्य करते–करते जब काफी समय हो गया, तो उन्होंने सोचा कि इन विषय–भोगों के त्यागने में ही जीवन का सच्चा आनन्द समाया हुआ है। विषयों को हम चाहे जितना भोगें, चाहे जितना प्यार करें, किन्तु एक दिन वे निश्चय ही हम से अलग हो जायेंगे और जब वे विषय हमको छोड़ेंगे, तब हमें मन में बड़ा दुःख और क्लेश होगा। इसलिए हम उनको अपनी इच्छा से छोड़ दें, तो हमें अनन्त सुख व शांति प्राप्त होगी।

उधर दमयन्ती भी अपने आपको आत्मसाधना में लगाने के लिए उत्सुक हो रही थी और जब महाराज नल की इस भावना को सुना, तो अपना प्रमोद भाव व्यक्त करते हुए बोली कि आपकी इस प्रशस्त भावना का मैं आदर करती हूँ। हमारा जीवन इस संसार के कीचड़ में पड़ा नहीं रह जाना चाहिए। अतः आप अपने विचारों को मन–वचन–काया से कार्य रूप में परिणत कर दीजिये। मैं भी आपकी तरह भावना रखती हूँ कि सर्वस्व का त्याग कर साध्वीचर्या में अपने आपको लगा दूं।

इस प्रकार पति–पत्नी की जब गृहत्याग की भावना बनी, तो महाराज नल ने अपनी जिम्मेदारियों से उऋण होने के लिए अपने पुत्र पुष्कल का राज्याभिषेक करने का निश्चय किया और राजसभा में अपने निश्चय की घोषणा करते हुए कहा–सारी प्रजा का मेरे प्रति प्रेम है। लौकिक दृष्टि से जो कर्तव्य करने चाहिए थे, वे किये। मैंने

जीवन में ठोकरें भी खायीं, प्रायश्चित्त भी किया, परन्तु इतने से ही संतुष्ट नहीं हूँ और अब जीवन का पूरा विकास करने के लिए, निर्ग्रन्थ अनगार बनने के लिए श्रमणधर्म अंगीकार करना चाहता हूँ। मेरी पत्नी भी गृहत्याग करके श्रमणधर्म की साधना करना चाहती है। अब मेरे स्थान पर मेरे पुत्र को समझें। अब यह आपका शासक होगा। आप लोग राज्य–कार्यों के बारे में उसी से निर्देश लेवें।

प्रजा को जैसे ही अपने प्रिय राजा–रानी के गृहत्याग के विचारों की जानकारी हुई, तो उसने बड़े ही हर्षोल्लासपूर्वक उनका समर्थन किया और आपस में कहने लगी कि महाराज! आप इस कार्य द्वारा हमारे सामने एक नया आदर्श उपस्थित कर रहे हैं।

निश्चित समय पर महाराज नल ने कुमार पुष्कल का राज्याभिषेक किया और समस्त विधियाँ सम्पन्न हो जाने पर पुष्कल को राजदण्ड सौंपते हुए कहा–आज बड़े हर्ष की बात है कि मैं राज्य और गृहस्थी की जिम्मेदारियों से उऋण होकर दमयन्ती सहित शेष जीवन आत्म–चिंतन में व्यतीत करने के लिए वन में जा रहा हूँ। पुष्कल चतुर है। अपने न्यायनीति युक्त व्यवहार के द्वारा यह एक प्रजाप्रिय शासक सिद्ध होगा। फिर भी पिता होने के कारण मेरा कर्तव्य है कि शिक्षा के रूप में दो शब्द कहूँ। इसलिए मैं पुष्कल को यह शिक्षा देता हूँ कि राजा और प्रजा का सम्बन्ध पिता–पुत्र जैसा है। जिस प्रकार पुत्र के सुख–दुःख आदि का ध्यान पिता रखता है, उसी प्रकार राजा का भी कर्तव्य है कि प्रजा का दुःख दूर करने में क्षणमात्र की भी शिथिलता नहीं आने देनी चाहिए। प्रजा के सुखी रहने पर ही राजा सुखी रह सकता है। इसके साथ ही प्रत्येक व्यक्ति का दान और मान से सम्मान करना भी राजा का कर्तव्य है।

अन्त में एक विशेष बात कहना चाहता हूँ कि राजा का जीवन न्यायनीति वाला हो। उसमें कुव्यसन तो होना ही नहीं चाहिए, क्योंकि ***;Fkk jktk rFkk i:tk^** इस कहावत के अनुसार प्रजा उन

कार्यों को विशेष रूप से अपनाती है, जिन्हें राजा करता है। इसलिए राजा में कुव्यसन होंगे, तो प्रजा का जीवन बिगड़ेगा और चारित्रिक पतन होने से राज्य में सुख–समृद्धि नहीं रह सकेगी। साथ ही मैं प्रजा को भी दो शब्द कह देना चाहता हूँ। वह राजा को ही सब कार्यों को करने का जिम्मेदार न समझ ले, किन्तु दोनों आपस में मिलकर एक–दूसरे से सहयोग रखकर न्याय–नीति पूर्वक राज्य–व्यवस्था करेंगे, तो जीवन में सुख–शांति समृद्धि का अनुभव होगा। इसके सिवाय और विशेष क्या कहूँ।

नये राजा पुष्कल ने अपने पिताश्री की शिक्षाओं के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा कि मैं आपकी शिक्षाओं का जीवन–पर्यन्त पालन करूंगा और प्रजाजनों से यह आशा करता हूँ कि वे राज्यकार्यों में सहयोग देकर राज्य को सुख–सम्पन्न बनाने में सहायता देंगे।

इस प्रकार लौकिक जिम्मेदारियों से निर्द्वन्द्व होकर महाराज नल और महारानी दमयन्ती आत्मसाधना के निमित्त वन जाने के लिए राजभवन से निकल कर बाहर आये। हजारों नगरवासी कल्याण–मार्ग के इन पथिकों को विदाई देने के लिए साथ–साथ चल पड़े। वन में आकर महाराज नल और दमयन्ती श्रमण–धर्म अंगीकार करने के लिए जिनसेन नामक अणगार के पादमूल में पहुँचे और दीक्षित होकर अपने–अपने जीवन को कृतार्थ बनाने के लिए आत्म–साधना में रत हो गये।

❖ ❖ ❖

उपसंहार

चरित्र कहने–सुनने का तात्पर्य यही है कि उसमें वर्णित अच्छे कार्यों का हम अनुसरण करें और बुरे कार्यों का त्याग किया जाये। श्रेष्ठ कार्यों का आधार है न्याय–नीतिपूर्वक व्यवहार करना। ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे जीवन कंलकित हो। महाराज नल के जिन जीवन–प्रसंगों का यहाँ चित्रण किया गया है, उनसे यह स्पष्ट झलकता है कि नैतिकता को तिलांजलि देते ही उन पर संकटों का पहाड़ आ गिरा। वे अपने पद से पतित होकर वन–वन भटकते फिरे, अपनी जिम्मेदारी को भूल कर पत्नी को अकेली छोड़ दिया और गुप्तवास में रहकर अपनी रक्षा करनी पड़ी और जब विवेक–पूर्वक दोषों का परिमार्जन किया, तो नर से नारायण बनने के मार्ग पर अग्रसर हो गये।

दमयन्ती के जीवन को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि व्यक्ति को विकट से विकट संकट में भी अपनी पवित्रता व नैतिकता के धरातल से नहीं डिगना चाहिए। पवित्रता और नैतिकता में ऐसी शक्ति होती है, जिससे व्यक्ति जन–जन की श्रद्धा का केन्द्र बन जाता है।

महाराज नल और महारानी दमयन्ती के चरित्र सुनने का लाभ तो तभी हो सकता है, जब हम सभी बुरे कार्यों से बच कर अच्छे

कार्यों में प्रवृति करें। यदि हमारा नैतिक धरातल ठीक है, तो आध्यात्मिक धरातल भी ठीक होगा और आध्यात्मिक विकास करना चाहते हो, तो नैतिकता को अपनाने की सबसे पहले कोशिश करो। नैतिकता को अपनाने वाले का सदा कल्याण ही कल्याण है।

❖ ❖ ❖